यति श्री जयचंद विरचित

सईकी

सम्पादक

स्व० श्री मुनि कान्तिसागर

प्रकाशक
छुट्टनलालजी वैराठी
रामललाजी का रास्ता
जयपुर–३

मुद्रक
आनन्द प्रेस
गौरीगंज, वाराणसी

स्व० श्री मुनि कांतिसागरजी महाराज
प्रमुख पुरातत्व वेत्ता, प्रखर ओजस्वी प्रवक्ता
जिनकी क्रांतिकारी लेखनी ने
पुरातन का शोधपूर्ण अंकन किया
जिनकी ओजस्वी वाणी ने
सभी को समान रूप से प्रभावित किया
जिनका सम्पूर्ण जीवन
जैन संस्कृति के उत्कर्ष हेतु संघर्ष रत रहा।

दो शब्द

मान्यवर,

यद्यपि मेरा साहित्य से सीधा सम्बन्ध नहीं है, परन्तु जब से मुनि श्री कांतिसागरजी महाराज के सम्पर्क में आया तो मेरे मन में भी साहित्य के प्रति न केवल रुचि ही पैदा हुई, अपितु मुनिश्री की विद्वत्ता एवं शोधपूर्ण पुरातत्व शोधन प्रवृत्ति ने साहित्य के प्रति श्रद्धा भी प्रस्फुटित हुई। इसी श्रद्धा ने मेरे मन में इस विचार को जन्म दिया कि पुरातन जैन साहित्य के प्रकाशन का कार्य यदि हाथ में लिया जाये, तो यह सही दिशा की ओर एक कदम होगा।

इसी बीच काल के क्रूर हाथों ने इस योजना के प्रेरणाश्रोत मुनि श्री को हमेशा-हमेशाके लिये अलग कर दिया। जो कुछ प्रकाशन की एक क्रांतिकारी योजना उनके मस्तिष्क में अपनी रेखाचित्र बना चुकी थी, वह जन्म लेने से पूर्व ही स्वतः समाप्त हो गई।

अब केवल मुनिश्री की स्मृति में उन्हीं द्वारा प्रेरित यह प्रकाशन उन्हीं के चरणों में सादर समर्पित है।

यदि पाठकगण इस प्रकाशन से कुछ भी लाभ उठायेंगे, तो मैं अपने उद्देश्य की प्राप्ति में इसे सहयोग समझूंगा।

आपके सहयोग की आशा में—

भवदीय

छुट्टनलाल बैराठी

रामललाजी का रास्ता,

जयपुर–३

श्री गेन्दोलाल बैराठी

धर्मनिष्ठ, मृदु स्वभावी एवं सरल हृदयी
श्री बैराठीजी सामाजिक कार्यों में सदैव अग्रणी रहे।

भूमिका

इतिहास को सर्वथा प्रामाणिक और सर्वांगपूर्ण बनाने के लिये विविध सूत्रों से प्राप्त अनेक प्रकार की आधार-सामग्री की आवश्यकता स्पष्टतया सुज्ञात और सर्वमान्य है। राजकीय कागज-पत्रों और सरकारी पुरालेख-संग्रहों में प्राप्य जानकारी के ही आधार पर लिखे गये इतिहास ग्रन्थों की प्रामाणिकता तथा उनके विशेष महत्त्व के बारे में दो मत नहीं हो सकते। तथापि उनमें विभिन्न घटनाओं और उनके अलग-अलग पहलुओं के सापेक्षिक महत्त्व का निर्धारण किसी विशेष दृष्टिकोण से ही होता है। पुनः जिन मामलों को शासन गुप्त रखना चाहे या जिनका शासन से कोई सीधा सम्बन्ध न हो, तद्विषयक जानकारी वहां से अप्राप्य ही रहेगी। अतः मुख्यतः शासकीय आधार-सामग्री पर ही रचित ग्रंथ एकांगीय होंगे। इसी कमी को दूर करने के लिए इतिहासकार शासन से असंबद्ध तथापि विश्वसनीय ऐतिहासिक आधार-सामग्री की खोज में रहते हैं। यह सामग्री विभिन्न प्रकार की होती है। शासन से असंबद्ध विद्वानों द्वारा लिखे गये इतिहास-ग्रंथों के अतिरिक्त समकालीन यात्रा-ग्रंथ, तत्कालीन महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की आत्मकथाएं-जीवनियां, उनके निजी कागज-पत्र तथा दैनिकी आदि, ऐतिहासिक काव्य, वंशावलियां, ख्यातें और शासनेतर शिलालेख तथा दानपत्र भी इतिहासकारों के लिए बहुत ही उपयोगी प्रमाणित होते हैं।

जैन विद्वानों ने भी समय-समय पर प्राकृत आदि भाषाओं में अनेकानेक चरित्रों, कथा-वार्ताओं आदि बहुत से ऐतिहासिक ग्रंथों की रचना की है, जिनमें इतिहासकारों के लिये पर्याप्त महत्त्वपूर्ण उपयोगी सामग्री मिलती है। यह जानकारी मुख्यतः अशासकीय ही होती थी। जैन विद्वानों द्वारा लिखी गई पट्टावलियों में सन्-संवतों के क्रमानुसार घटनाओं का उल्लेख तथा उनका ऐतिहासिक विवरण मिलता है। विक्रम की १८वीं सदी में रचित यति जयचन्द की यह राजस्थानी कृति 'सईकी' उसी ऐतिहासिक-साहित्य की परंपरा में एक नई कड़ी जोड़ देती है। अपने ढंग की इस एकमात्र अनूठी रचना में उसी शताब्दी के पूरे पचास वर्षों (सं० १७१५ वि० से १७६६ वि० तक) की घटनाओं तथा परिस्थितियों का व्यवस्थित क्रमबद्ध विवरण मिलता है। राजनैतिक घटनाओं के साथ ही लेखक ने तब की सामाजिक परिस्थितियों, आर्थिक परिवर्तनों और वाणिज्य में निरंतर हो रहे फेर-बदलों का भी विवरण लिखा है जिससे पश्चिमी

राजस्थान के तत्कालीन इतिहास के अनेक पहलुओं पर वस्तुतः नया प्रकाश पड़ता है।

कवि जयचन्द का दूसरा नाम जयविमल भी देखने को मिलता है जो संभवतः उसका नंदी का नाम होगा। यद्यपि उसके व्यक्तिगत जीवन के वारे में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं है, यह अवश्य ही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जयचंद राजस्थान की सुविख्यात कीर्त्तिरत्नसूरि-शाखा से संवद्ध था। उसके गुरु श्री सकलहर्ष ने उसे यति और मुनि-समुदाय के साथ ही कवि विद्वत्परंपरा में भी दीक्षित किया था। जयचंद का जीवन प्रधानतया पश्चिमी राजस्थान में मेवाड़, जोधपुर और बीकानेर के राज्यों में ही व्यतीत हुआ जान पड़ता है। किन्तु कवि की भाषा को देखते हुए यही अनुमान होता है कि वह मूलतः उत्तरी मेवाड़ का निवासी रहा होगा।

"सईकी" कवि की अंतिम और प्रौढ़ रचना है। कवि की सीधी-सादी राजस्थानी भाषा कल्पनापूर्ण या आलंकारिक नहीं होते हुए भी मार्मिक और प्रभावपूर्ण अवश्य ही हो गई है। "सईकी" की एकमात्र प्राप्य हस्तलिखित प्रति में कहीं भी कोई संकेत, उल्लेख या पुष्पिका नहीं है जिससे उसके रचनाकाल के वारे में कोई वात निश्चयपूर्वक कही जा सके। परन्तु "सईकी" के प्राप्त मूलपाठ को देखने से अनुमान होता है कि संवत् १७६५ वि० में "नमस्कार वत्तीसी" को संपूर्ण करने के वाद ही जयचंद "सईकी" की रचना करने में लग गया होगा। तव उसने सं० १७६१ वि० तक का क्रमवद्ध विवरण लिख डाला। तदनंतर वाधाएं उठ खड़ी हुईं। कुछ समय वाद कवि ने सं० १७६२ वि० से सं० १७६६ वि० तक का भी विवरण लिखा, परन्तु कारणवश पूर्व लेख के साथ वह संवद्ध नहीं किया जा सका। वि० सं० १७६६ के वाद तो "सईकी" की रचना का कार्य विल्कुल ही रुक गया। अंत में सं० १७७० वि० में जव इस ग्रंथ को यथेच्छित आकार-प्रकार में संपूर्ण कर सकने की उसे कोई आशा ही नहीं रह गई, तव कवि ने किसी प्रकार इसका समापन करने का निश्चय किया। अतः उपसंहार के रूप में सं० १७७० वि० तक का अति संक्षिप्त विवरण लिखा और तदनंतर सं० १७७१ वि० से लेकर सं० १८०१ वि० तक का वृत्त आगम के रूप में ही दे दिया। इस उपसंहार में दी गई वह जानकारी एकमात्र खाद्यान्नों के भावों तक ही सीमित है। प्राप्य प्रति का प्रथम पृष्ठ नष्ट हो जाने के कारण "सईकी" का विवरण वस्तुतः सं० १७१५ वि० से सं० १७६६ वि० तक के ५० वर्षों संवंधी ही है। इस ग्रंथ के परिशिष्ट में प्रकाशित किये जा रहे जयचंद के "ऐतिहासिक कवित्त" मुख्यतः "सईकी" में वर्णित विषयों के वारे में ही हैं। अतः वे उसके पूरक वन गये हैं। यों प्रकाशित होकर ये नष्ट होने से वच गये हैं।

"सईकी" में वर्णित विषयों को मुख्यतया तीन विभिन्न वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक। जहां जयचंद ने स्थानीय और प्रादेशिक के साथ ही अखिल भारतीय महत्व की भी राजनैतिक घटनाओं का विवरण सविस्तार लिखा है, वहां सामाजिक तथा आर्थिक विषयों का विवेचन मुख्यतया पश्चिमी राजस्थान तथा उसके आस-पास के प्रदेशों की उन परिस्थितियों तक ही सीमित है जिन्हें उसने स्वयं देखा, जाना या समझा था। समय-समय पर पड़े छोटे-बड़े दुष्कालों, युद्धों या राजनैतिक उलट-फेरों के परिणाम स्वरूप उत्पन्न आर्थिक समस्याओं का विवरण देते हुए जयचंद ने तब खाद्यान्नों के वहां प्रचलित भावों की घटा-बढ़ी का उल्लेख तथा तज्जन्य जनसाधारण की सुविधा अथवा कठिनाइयों का भी विवेचन किया है, जिनसे उस काल के वहां के आर्थिक इतिहास पर नया प्रकाश पड़ता है।

मुगल साम्राज्य पर उत्तराधिकार के लिए किये गये औरंगजेब तथा उनपचास वर्ष बाद उसके पुत्र बहादुरशाह के युद्धों का कविने सविस्तार वर्णन किया है। इसी प्रकार जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह की मृत्यु से औरंगजेब की मृत्यु तक जोधपुर के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर मारवाड़ में जो कुछ भी चलता रहा तथा वहां महाराजा अजीतसिंह, वीरवर दुर्गादास और उनके अन्य साथी सरदारों तथा सेनानायकों ने जो भी किया-कराया, और राज्य-सिंहासन पर बैठने के बाद राजस्थान के प्रमुख नरेशों के प्रति बहादुरशाह की नीति आदि सब का ही वृत्त जयचंद ने पर्याप्त विस्तार के साथ लिखा है। मुगल साम्राज्य से संबद्ध मराठों के इतिहास की भी कई मुख्य घटनाओं का जयचंद ने उल्लेख किया है। इन सब का ही प्रामाणिक इतिहास सुज्ञात है। इसमें महत्व की बात यह है कि इन सब ही अवसरों पर राजस्थान के प्रमुख नरेशों ने कब कहां क्या-कुछ किया तथा राजस्थान में तब क्या-क्या होता रहा, इस बात पर भी जयचंद ने विशेष प्रकाश डाला है। पुनः मेवाड़, मारवाड़, बीकानेर, आदि राजस्थान के राजघरानों तथा उनकी राजधानियों में समय-समय पर होने षड्यंत्रों, आन्तरिक संघर्षों और अन्य महत्वपूर्ण स्थानीय घटनाओं की भी जानकारी जयचंद ने "सईकी" में सयत्न प्रस्तुत की है जो प्रादेशिक इतिहास के कई अज्ञात प्रसंगों पर नया प्रकाश डालती है।

"सईकी" की मुख्य विशेषताएँ दो हैं। प्रथम तो जयचंद के लेखन में अतिशयोक्ति का पूर्ण अभाव है और संक्षेप में बहुत कुछ कहने का उसने सफल प्रयत्न किया है। दूसरे, उसने कुछ भी देखा-सुना, जाना समझा या अनुभव किया, वह उसने वैसा का वैसा वर्णित कर दिया है। जिन-जिन घटनाओं के बारे में जयचंद ने "सईकी" में लिखा है वे सब उसके जीवन काल में ही घटी थीं। अतः

या तो उनके बारे में आवश्यक जानकारी उसे अपने बड़े-बूढ़ों और गुरुजनों से प्राप्त हुई होगी या उन्हें उसने स्वयं जाना या देखा-सुना था। यह तो स्पष्ट है कि विक्रम की १८ वीं शताब्दी में तब संचारण तथा शीघ्र और सही सूचना-प्राप्ति के साधनों का पूर्ण अभाव था। समाचार पत्रों के अभाव में तब देश या प्रदेश के भी सुदूर भागों की घटनाओं की पूरी-पूरी जानकारी कई बार सुलभ नहीं हो सकती थी। पुनः कुछ वर्षों पुरानी समकालीन घटनाओं की जानकारी कहीं संकलित भी नहीं की जाती थी कि स्मृति-भ्रम के कारण होनेवाली सन् संवतों या सही घटनाक्रम संबंधी भूलों को सुविधापूर्वक आसानी से ठीक किया जा सकता। अतः "सईकी" में इस प्रकार की जो स्खलनाएँ यत्र-तत्र हो गई हैं, वे क्षम्य हैं और उन्हें आसानी से ठीक किया जा सकता है। कई एक मामलों में कवि की जानकारी जनसाधारण में तद्विषयक प्रचलित विवरण या उनकी मान्यताओं तक ही सीमित थी। विदेशी यात्रियों के विवरणों में भी प्रायः इसी प्रकार के अनेकों उल्लेख मिलते हैं जिनसे तब प्रचलित प्रवादों, सूचनाओं तथा मान्यताओं की विशेष जानकारी प्राप्त होती है। अतः अज्ञात ऐतिहासिक घटनाओं के "सईकी" के विवरणों में जहाँ कहीं भी कोई विभिन्नताएँ देखने को मिलती हैं वे इसी तथ्य की ओर संकेत करती हैं। कई बार तो उनसे उन घटनाओं विषयक कुछ अबूझ गुत्थियों को समझने या सुलझाने में भी सहायता मिलती है।

ऐतिहासिक आधार-सामग्री के रूप में "सईकी" की मुख्य देन हैं, उसमें वर्णित अनेकानेक समकालीन महत्वपूर्ण घटनाओं के प्रति उस प्रदेश के जनसाधारण की तात्कालिक भावनाएँ, मान्यताएँ और उनकी सार्वजनिक प्रतिक्रियाएँ, स्थानीय तथा जनसाधारण के महत्व की अनेकानेक घटनाओं का विवरण तथा वहाँ के सामाजिक और आर्थिक इतिहास पर विशेष प्रकाश डाल सकने वाली ब्यौरेवार जानकारी। "सईकी" में वर्णित स्थानीय महत्व की अनेकों घटनाओं के सही संदर्भों का ठीक-ठीक पता आज नहीं लग रहा है। तदर्थ विशेष खोज अध्ययन–आवश्यक है। तद्विषयक अन्य प्राप्य आधार-सामग्री के सावधानीपूर्वक गहरे अनुशीलन के बाद ही उनका पूरा सही अर्थ निकाला और समझा जा सकेगा।

भारत के विभिन्न प्रदेशों के विस्तृत प्रामाणिक प्रादेशिक इतिहास अभी लिखे जाने शेष हैं। एतदर्थ प्रादेशिक भाषाओं में प्राप्य समकालीन आधार-सामग्री का समुचित महत्व अब अधिकाधिक स्पष्ट रूपेण समझा जाने लगा है। अतः "सईकी" के इस प्रकाशन का पूर्ण स्वागत है। शाहपुरा निवासी श्री व्रजमोहन जावलिया वस्तुतः धन्यवाद के पात्र हैं कि वे यति जयचंद कृत रचनाओं के इस स्वलिखित संग्रह को प्रकाश में लाये। मुनि कान्तिसागरजो ने "सईकी"

का अध्ययन किया, उसके उचित महत्व को समझा, उसका सयत्न संपादन किया तथा अब उसे प्रकाशित करवा कर विद्वानों के साथ ही सर्वसाधारण के लिए भी इसे सुलभ कर रहे हैं। उनके प्रति तदर्थ कृतज्ञता-ज्ञापन की कोई औप-चारिकता बरतना उनकी साहित्य-साधना के महत्व को घटाना ही होगा।

"रघुवीर निवास"
सीतामऊ, (मालवा)
दिसम्बर १२, १९६३ ई०

रघुवीरसिंह
(एम० ए०, डी० लिट्)

प्रस्तावना

सत्रहवीं-अठारहवीं शती में जैन समाज में यतियों का प्राबल्य था। जहाँ मुनिजन अपने कठोर आचार और नियमों के कारण आसानी से पहुँचने में असमर्थ होते थे वहाँ यतिजन सरलतापूर्वक पहुँच कर संघ-व्यवस्था और धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न कराते थे। आजकी अपेक्षा उन दिनों का यह वर्ग अधिक संगठित था, उनकी अपनी पूर्वाजित प्रतिष्ठा कायम थी और जैसे भी उनके नियम रहे हों, श्रद्धापूर्वक उनका परिपालन करते थे। व्यवस्था ऐसी थी कि वे एक ही आचार्य के अधीन रह कर, जहाँ जिसे चातुर्मासार्थ जाने का आदेश प्राप्त होता वहाँ चल देते। कभी-कभी एक से अधिक वर्ष भी और कहीं-कहीं यतियों का स्थायी निवास भी हुआ करता था। भारत में बहुत से ऐसे महत्त्वपूर्ण स्थान हैं जहाँ यतियों के स्वतंत्र निवास स्थान (उपाश्रय) हैं। उनके अपने निजी ज्ञानागार भी पर्याप्त पाये जाते हैं। एक समय था जब कि इनका स्थान नगर-गुरु के रूप में बना हुआ था।

यतिवर्ग की जीवनचर्या केवल धार्मिक जगत तक ही सीमित न थी, उनका जीवन केवल धर्म स्थानों की दीवारों में ही आवृत न था, वे केवल एक ही वर्ग विशेष से संबद्ध न थे, प्रत्युत अन्य सांस्कृतिक और साहित्यिक, उदात्त व लोक मंगलकारी प्रवृत्तियाँ उनके जीवन का आवश्यक अंग थीं, सतत भ्रमणशील जीवन, विद्वत्ता और एकान्त ज्ञानोपासना से स्वभावतः ही इस वर्ग का अनुभव बहुत परिपक्व होता था। सामान्य यतिजन अवकाश के क्षणों में पुरातन ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ किया करते थे और विशिष्ट योग्यता प्राप्त विद्वान् व साहित्यसेवी स्वतंत्र ग्रन्थ-प्रणयन में कालक्षेप कर माता शारदा के मंदिर में ग्रंथ-रूपी पुष्प समर्पित कर गौरवान्वित होते थे। भारतीय ज्ञानमूलक परम्परा की इस संरक्षण और प्रसारण-प्रणालिका के परिणामस्वरूप ही यतियों के ज्ञानागार बहुमूल्य कृतियों से भरे पड़े हैं। इनमें ऐसी अनेक कृतियाँ पाई जाती हैं जिनका अन्यत्र पाया जाना दुर्लभ है। विशेषकर हिन्दी साहित्य के संरक्षण में तो यतियों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योग रहा है। कभी-कभी तो ऐसी अद्‌भुत सामग्री वहाँ मिल जाती है कि उससे कई नूतन तथ्यों का उद्‌घाटन होता है।

प्रसंगतः एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक जान पड़ता है कि साहित्य संरक्षण और निर्माण में जैन यति-मुनि सदैव उदार और असांप्रदायिक रहे हैं। यद्यपि इसकी विशद् व्याख्या का यह स्थान नहीं है, पर इतना लिखने का लोभ

संवरण नहीं किया जा सकता कि साहित्य को इस वर्ग की ऐसी मौलिक देन है जो विस्मृत नहीं की जा सकती। नगर-वर्णनात्मक हिन्दी गजलें इसमें मुख्य हैं। हिन्दी का रासो साहित्य इसी वर्ग द्वारा सुरक्षित रह सका। प्राचीन प्रतियाँ इन्हीं के द्वारा आलेखित मिलती हैं। ज्योतिष और आयुर्वेद के शताधिक ग्रंथ उदाहरण स्वरूप उपस्थित किये जा सकते हैं। लोकभोग्य साहित्य में बहुत-सी मूल्यवान कृतियाँ इस वर्ग द्वारा सृजित प्राप्त हैं। ये जहाँ कहीं जाते और महत्व की कोई घटना होती तत्काल लिपिबद्ध कर लिया करते थे। आज वही हमारे लिए खोज की महत्त्वपूर्ण सामग्री है।

इस प्रबंध में एक ऐसे ही यति की साहित्य-साधना का परिचय कराया जा रहा है, जो अद्यावधि सर्वथा अज्ञात था। कवि स्वयं धार्मिक नेता होते हुए भी तात्कालिक राजनैतिक इतिहास, राजघरानों की व्यवस्था, सामाजिक, वाणिज्य और अन्य ज्ञातव्य तथ्यों के प्रति कैसा जागरूक दृष्टिकोण लिए हुए था, यह उसकी कृतियों से भली भाँति सिद्ध है।

कवि-वंश और कवि-परिचय

कवि जयचंद्र नामक और भी कुछ व्यक्तियों का उल्लेख जैन साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। एक तो पार्श्वचन्द्रगच्छीय विमलचन्द्र के शिष्य जिनका समय सम्वत् १६५४ है और दूसरे खरतरगच्छीय सईकोकार के समकालीन जयचन्द्र जो माताजी की निशानी के प्रणेता थे। तीसरे खरतरगच्छीय कर्पूरचन्द्र के शिष्य, जिनका समय सम्वत् १८७८ के लगभग पड़ता है। उल्लेखनीय जयचन्द्र उपर्युक्त सभी जयचन्द्रों से भिन्न हैं। इनका समय अठारहवीं शती है। ये खरतरगच्छीय आचार्य कीर्तिरत्नसूरि शाखा के वाचक सकलहर्ष के शिष्य थे। इन्होंने अपनी विभिन्न कृतियों में जो गुरु परम्परा दी है वह इस प्रकार है :—

कीर्तिरत्नसूरि
|
हर्षविशाल
|
लब्धिकल्लोल
|
ललितकीर्ति
|
विनयराज
|
सकलहर्ष
|
जयचन्द्र या जयविमल

कीर्तिरत्न शाखा का प्रादुर्भाव सोलहवीं शती में हुआ था। इसके प्रथम आचार्य कीर्तिरत्नसूरि का जन्म सम्वत् १४४९ में, दीक्षा १४६३ और सम्वत् १४९७ माघ शुक्ल दशमी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए।

सम्वत् १५२५ में स्वर्गवासी हुए। ये अपने समय के परमप्रतापी विद्वान् और प्रभावक आचार्य थे। पांच शताब्दी व्यतीत होने के बाद भी आज भी इनकी शिष्य-परम्परा विद्यमान है। खरतरगच्छ के अत्यन्त प्रभावक आचार्य श्री जिनकृपाचन्द्र-सूरि, पूज्य स्व० गुरुदेव, उपाध्याय श्री सुखसागरजी महाराज और इन पंक्तियों का लेखक इसी परम्परा से सम्बद्ध हैं। राजस्थान के बहुत बड़े भाग पर इसी शाखा का एक समय इतना प्रभुत्व था कि इसके द्वारा जैन संस्कृति, साहित्य और कला का प्रभूत विकास हुआ।

हर्षविशाल का उल्लेख ललितकीर्ति ने अपने अगरदत्त रास में (रचना काल सम्वत् १६७९ ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा रविवार, भुज) किया है। इनके बाद हर्ष-विशाल, हर्षधर्म, साधुसुन्दर और विनयरंग हुए जिनका पारम्परिक उल्लेख कवि ने नहीं किया है। अंतिम विमलरंग के शिष्य लब्धिकल्लोल हुए थे। गुरु-परम्परा का संक्षेप में उल्लेख करने के कारण ही सम्भवतः ये नाम छोड़ दिए होंगे। लब्धि-कल्लोल और ललितकीर्ति दोनों गुरु शिष्य कवि और ग्रंथकार थे। ललितकीर्ति ने अपने गुरु का एक गीत के द्वारा परिचय कराया है। इनकी चरण-पादुका आज भी कच्छ भुज में विद्यमान है। ललितकीर्ति स्वयं उत्कृष्ट साहित्यकार थे जैसा कि इनके द्वारा विनिर्मित, माघ काव्य की संदेहान्धकार विध्वंसदीपिका नामक वृत्तिसे ज्ञात होता है। जिसका अंत भाग इस प्रकार है :—

इति श्री खरतरगच्छे वरेण्याचार्यकीर्तिरत्नसूरिसंतानीय—वाचनाचार्यश्री—लब्धिकल्लोलगणिक्रमाम्भोजभृङ्गायमानशिष्य-महोपाध्यायललितकीर्तिगणिविरचितायां सन्देहान्धकारविध्वंसदीपिकायां ललितमाघदीपिकायां सुरतवर्णनो नाम दशमः सर्गः[१]

विनयराज और सकलहर्ष का उल्लेख अन्यत्र नहीं मिलता। ये दोनों क्रमशः कवि के गुरु-प्रगुरु थे। विनयराज की नवोपलब्ध कृति अंतरिक्ष पार्श्वनाथ छन्द इन पंक्तियों के लेखक के संग्रह में है जिसकी रचना सम्वत् १७३८ चैत्र में हुई थी जैसा कि अंतिम पद्य से स्पष्ट है :

"इम अंतरीक निजिक मन घर सेवतां संपत करो
संवत सतरैसे अडतीसै चैत्रमास मनोहरो

---

१. कैटलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्यूस्क्रिप्ट्स
मुनि पुण्यविजयजी कलैक्शन—पार्ट २ प्रशस्त्यादि संग्रह पृष्ठ २६१।

उवझाय ललितकीरत सकलपाठक दिनमणी
तस सोसवाचक जिनराजै विनवियो त्रिभुवन धणी"[1]

इस समय में इस शाखा के और भी कई प्रतिष्ठित कवि और लेखक हुए हैं जिसका अन्यत्र उल्लेख दृष्टिगोचर नहीं होता।

जयचन्द के वैयक्तिक जीवन को आलोकित करने वाले ऐसे ऐतिहासिक उल्लेख नहीं मिलते और न कवि ने ही अपने विषय में कुछ कहा है। इनकी रचनाओं के विषय और भाषा शैली से इतना तो निश्चित ही है कि ये राजस्थान के निवासी थे और इनका अधिकतर जीवन मेवाड़, जोधपुर और बीकानेर राज्यों में व्यतीत हुआ, क्योंकि इनकी कृति सईकी में इन तीनों राज्यों को आन्तरिक घटनाओं का जैसा व्यवस्थित वर्णन मिलता है वह प्रत्यक्षदर्शी या निकटस्थ व्यक्ति ही कर सकता है। सेरूणा और बीलावास में तो कवि रह ही चुका है जैसा कि वहाँ पर रचित कृतियों की अंत्य-प्रशस्तियों से स्पष्ट है। कवि ने राजस्थान के ग्रामीण व्यवसायियों का भी तादृश चित्रण किया है और तन्निकटस्थ भू-भाग के लोगों की मनोवृत्ति का भी विवेचन किया है। इनके सर्वदर्शनी गीत में भी जिन साधुओं का वर्णन आया है वे अधिकतर राजस्थानी ही हैं।

इनका अस्तित्व समय इनकी रचनाओं के आधार पर सं० १७३०-१७७१, लगभग स्थिर होता है, कारण कि प्रथम रचना कवित्तबावनी सं० १७३० मिगसर सुदि पूर्णिमा को सेरूणा में रचित है और अंतिम रचना, जिसमें संवत् का निर्देश है, नवकारबत्तीसी है, जो सोजत के निकट बीलावास में सं० १७६५ पोष दशमी गुरुवार को निर्मित हुई। अठारहवें सैके की सईकी, जो कवि की सर्वोत्कृष्ट और विशेष उपयोगी रचना है, कब समाप्त की, इसके विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह अपूर्ण ही मिली है पर इसका जो मध्यभाग अन्यत्र प्राप्त है, उससे यह संभावना की जा सकती है कि कवि ने इसे सं० १७७० या ७१ में पूर्ण किया होगा, क्योंकि सं० १७७१ तक का हाल कवि अपने अनुभवों के आधार पर लिखता चला आ रहा था, सं० १७७१ के बाद यह आगमन या भविष्य-कथन के रूप में वर्णन करता है। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि कवि का रचना काल सं० १७३० से १७७१ के लगभग है।

जयचन्द्र और जयविमल

जिस हस्तलिखित गुटके में कवि की समस्त कृतियाँ आलेखित हैं उसमें जयचंद और जयविमल दोनों ही नामों का उल्लेख पाया जाता है, जो दो भिन्न व्यक्ति होने का भ्रम उत्पन्न करता है। परन्तु ये दोनों वस्तुतः भिन्न न होकर एक ही कवि हैं। यति और मुनि समुदाय में दीक्षित हो जाने पर नंदी के अनुसार गार्हं-

---

१. मुनि कान्तिसागर—राजस्थान का अज्ञात साहित्य वैभव।

स्थिक नाम बदल दिया जाता है। कभी-कभी कवि अपने पूर्व नाम से भी रचना करता रहता है, जैन साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। जयचन्द कवि का पूर्वावस्था का नाम रहा होगा और नंदी का नाम जयविमल रहा होगा। अतः नवकारबत्तीसी, ऋषभ और पार्श्वनाथ स्तवन एवं सवैया बावनी में रचयिता के रूप में जयविमल का नाम आया है और सईकी तथा कवित्त बावनी व स्फुट कवित्तों में जयचन्द्र नाम का प्रयोग हुआ है। सईकी का जो भाग मूल ग्रंथ के कुछ पत्र छोड़ कर उपलब्ध हुआ है उसकी समाप्ति पर कवि ने यह पंक्ति लिखी है—

"लिपिकृता कथिता वाचक जयचन्देण"

सम्पूर्ण गुटका एक ही लिपि में लिखा हुआ है और इसी में कवि का समस्त साहित्य भी संकलित है, और अन्यत्र वाचक जयविमल का उल्लेख लेखक के रूप में भी है। यह गुरु-परम्परा विनयराज, सकलहर्ष और जयचन्द्र या जयविमल तक ही सीमित है। यह तो साफ ही है कि दोनों गुरु-बंधु नहीं थे। अतः इन कारणों से सिद्ध है कि जयचन्द और जयविमल एक ही कवि है।

कवि-कृतियाँ

१ कवित्तबावनी रचना काल सं० १७३० मिगसिरि पूर्णिमा सेरूणा
२ सवैया बावनी रचना काल सं० १७३३ जोधपुर जसंवतसिंह राज्ये
३ ऋषभ स्तवन रचना काल सं० १७६३ चैत्री पूर्णिमा
४ नवकारबत्तीसी रचना काल सं० १७६५ वीलावास
५ सईकी अनुमित रचना काल सं० १७७०-७१
६ सर्व-दर्शन गीत
७ सीता स्वाध्याय
८ ज्योतिष कवित्त
९ ऐतिहासिक गुरु-कवित्त
१० तीर्थंकर स्तवन और वैराग्य पद संख्या १०
११ स्फुट कवित्त, दोहे, सोरठे और छप्पय, जिनकी संख्या २०० लगभग है।

कवि की इन रचनाओं को अध्ययन की सुविधा के लिए इतिहास, ज्योतिष, दर्शन, नैतिक-उपदेश, भौगोलिक और स्तुति इन भागों में विभक्त किया जा सकता है।

इतिहास

जैन मुनि-यतियों की ऐतिहासिक रचनाएँ विख्यात रही हैं। कवि की इतिहास के प्रति कितनी गहरी अभिरुचि थी, यह तो इनकी अठारहवें सैके को

सईकी-शती-शताब्दी-और एतद्विषयक स्फुट पद्यों से प्रकट हो जाता है। प्राकृत, संस्कृत और हिन्दी भाषाओं में सहस्री, सप्तशती, त्रिशती आदि संख्यासूचक अनेक रचनाएँ प्राप्त होती हैं। उल्लेख्य सईकी भी इन्हीं के अनुकरण स्वरूप ही लिखी गई प्रतीत होती है, पर अंतर केवल इतना ही है कि इसका नामकरण कवि ने शत पद्यात्मक कृति के रूपमें नहीं रखा, संख्या से यहाँ तात्पर्य नहीं है, पर इसमें तो पूरी एक शताब्दी का ऐतिहासिक और सामाजिक तथा वाणिज्य का तादृश चित्रण समुपस्थित करने के कारण ही इसे सईकी की संज्ञा दी गई है। यह संज्ञा विषय-मूलक है न कि संख्यामूलक। पद्य संख्या तो अपूर्ण कृति की ११४ तक पहुँच हो चुकी है।

इस कृति में सब से बड़ी और महत्वपूर्ण बात यह पाई जाती है, कि कवित्व-मूलक अतिशयोक्ति का इसमें प्राय: सर्वथा अभाव देखा गया है जब कि मध्ययुगीन ऐतिहासिक काव्यों में भी इतनी अत्युक्ति प्रविष्ट हो जाती है कि सचाई का पता लगाना कठिन हो जाता है। जो विज्ञ यह मानते हैं कि भारत में व्यवस्थित और क्रमबद्ध तथ्य संकलन की प्रणालिका न थी, वे सईकी को देखकर संभवत: अपनी मान्यता बदल दें।

कवि की इतिहास विषयक दृष्टि बहुत ही पैनी थी, तभी तो इसमें सागर को गागर में समाविष्ट करने का सफल प्रयास किया है। इसमें कवि ने तात्कालिक राजनैतिक इतिहास, राजघरानों के सत्ता प्राप्त्यर्थ पारस्परिक युद्ध, हत्याएँ और संघर्ष, महलों की आन्तरिक गतिविधियाँ, मेवाड़ के भीलों का यौद्धिक-कौशल व पराक्रम, राजस्थान के विभिन्न भू-भागों में अतिवृष्टि और अनावृष्टि, तथा यौद्धिक परिस्थितिवश खाद्यान्न की मँहगाई का हृदयद्रावक चित्रण, सुकाल का सुन्दर और सुखी जीवन, दुष्काल में देश त्याग की भीषणता, वस्त्र, कंबल, स्वर्ण, रजत, पशु आदि के भाव, शस्त्रादिकों के मूल्य, विभिन्न वर्षों में कहाँ-कहाँ दुर्भिक्ष-सुभिक्ष का क्या परिणाम आया, उन दिनों मुगलों में सत्ता प्राप्ति के लिये तथा राज-स्थान के राजघरानों में पारस्परिक क्या-क्या संघर्ष हुए, दक्षिण में राज्य-विस्तार की भावना के परिणामस्वरूप बीजापुर हैदराबाद में क्या-क्या घटनाएँ घटीं, कब कब राजस्थान की जनता को मालवा और गुजरात को शरण लेनी पड़ी, राज-स्थान के किन किन सरदारों ने किस समय पर कहाँ क्या और कैसे पराक्रम बताए आदि अनेक ज्ञातव्य तथ्यों का व्यवस्थित और संवतवार तादृश चित्र समुपस्थित कर अन्वेषकों का मार्ग प्रशस्त किया है। यद्यपि विशेष रूप से बीकानेर, मेवाड़ और जोधपुर के इतिहास की सामग्री सापेक्षत: अधिक संकलित की है, पर, प्रासं-गिक रूप में जयपुर आदि का भी समावेश हुआ है। इसमें कई तथ्य तो ऐसे दिये हैं जिन पर अद्यावधि प्रकाश की तो कौन कहे, उल्लेख तक अन्यत्र नहीं

हुआ है। मेवाड़ के भीलों का पुरुषार्थमूलक यश इसी में वर्णित है। औरंगजेब के प्रथम मेवाड़ आक्रमण को इन भीलों के चातुर्य ने ही विफल कर दिया था, यदि देसूरी की नाल में ही मुगलों को न रोका जाता तो बड़ी परेशानी का सामना करना पड़ता। दयालशाह (जो बनिया था) को मंत्रित्व के स्थान पर बैठाना, हीरा चँवरदार के कारनामे और राजसभा में राणा राजसिंह द्वारा अपने पुत्र को यमलोक पहुँचाना आदि कई ऐसी बातें हैं जिन पर सईकी अच्छा प्रकाश डालती है। कृति के कई ऐसे भी तथ्य हैं जिनका समर्थन तात्कालिक अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों से होता है। उज्जैन में जोधपुर नरेश जसवंतसिंह और औरंगजेब के मध्य जो वार्तालाप हुआ था, वह जैसा सईकी में वर्णित है, वही वचनिका में भी उल्लिखित है। यहाँ सईकी में वर्णित ऐतिहासिक तथ्यों का अन्य समसामयिक साधनों द्वारा विश्लेषण करने का अवसर नहीं है वह तो स्वतंत्र निबंध का ही विषय है।

सईकी की प्रति का प्रथम पत्र न मिलने से प्रारंभ के कतिपय पद्यों से हमें वंचित रह जाना पड़ा और आगे के ११४ के बाद का भाग भी अपूर्ण ही है। यद्यपि इसी गुटके में कवि द्वारा ३९-५२ तक के पद्य अलग से कवि के ही हाथ के लिखे मिले हैं। जिनके अंत में कवि ने सईकी की समाप्ति की सूचना दी है। वह और भी असमंजस में डाल देती है, क्योंकि दुर्भाग्य से इसके भी प्रारंभ के ३८ पद्य विलुप्त हैं। पता नहीं अप्राप्त भाग में क्या-क्या रहा होगा ?। इस प्रकार की रचना जब कभी अपूर्ण मिलती है तो हृदय में बहुत ही परिताप होता है। जहाँ तक वर्ण्य विषय का प्रश्न है, उपलब्ध पद्यों से समस्या हल हो जाती है। सं० १७६५ तक का वर्णन तो प्राप्त भाग में मिल ही जाता है और सं० १७६६ से १७९९ तक का वर्णन ३९-५२ तक के पद्यों से प्राप्त हो जाता है। पर इतना यहाँ स्पष्ट कर देना समुचित जान पड़ता है कि इस भाग का वर्णन कोई ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बद्ध न होकर केवल खाद्यान्न के भावों तक ही सीमित है। इस भाग में कवि ने दोहा छंद प्रयुक्त किया है। अतः संभव है कवि ने आत्मस्मृतियों को तो पूर्व सूचित ११४ पद्यों वाले भाग में व्यक्त कर दिया पर जब कृति का नाम सईकी (शती) रखा है तो कम से कम विषय निरूपण की दृष्टि से और इससे कृति का नाम सार्थक करने के लिये शत वर्ष का इतिहास तो आना ही चाहिए या यह भी हो सकता है कि ज्योतिष एवं ज्ञानबल से कवि ने अपना आयुष्य निकट जान कर सं० १७७० से भविष्य कथन के रूप में ही विचार व्यक्त किये हैं। सं० १७७० के पूर्व तो कवि जो भी लिखता है अधिकार के साथ, पर सं० १७७० के बाद आगम कथन में वार्तमानिक प्रयोग न करते हुए भविष्य का उल्लेख करता है। इससे तो पता चलता है कि कवि ने सईकी

नाम तो किसी भी रूप में सार्थक कर ही दिया। जब तक कोई ऐतिहासिक साधन या सईको की अन्य प्रति उपलब्ध नहीं हो जाती तब तक तो आनुमानिक स्थिति ही रहेगी।

यहाँ एक बात का उल्लेख भी आवश्यक है कि कवि ने स्फुट ऐतिहासिक पद्य भी लिखे हैं जिनका समावेश यथास्थान कर दिया गया है। इन पद्यों में कहीं-कहीं कवि ने अपना नाम नहीं दिया है, पर हैं इनके ही रचित।

ज्योतिष

इसमें तनिक भी शंका नहीं कि जयचन्द्र को ज्योतिष का भी विशद ज्ञान था। केवल सईको के भविष्य कथन से ही मैं यह कल्पना नहीं कर रहा हूँ बल्कि कवि ने इस विषय पर स्वतंत्र ग्रंथ ही लिखा है। कवित्त ज्योतिष में इन्होंने अपना एत-द्विषयक अनुभव लिपिबद्ध किया है। यद्यपि यह कृति अपने ढंग की कोई बहुत ही गंभीर और अनोखी नहीं है, पर सामान्यतः समाजोपयोगी सभी आवश्यक अंगों का समावेश इस प्रकार किया है कि अपना काम किसी भी स्थिति में नहीं रुक सकता। यह कृति अपने शिष्य, जो संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ रहे होंगे, खेता और राजा के लिये रची गई है। उन दिनों चातुर्मासार्थ जाने वाले यतियों को ज्योतिष का सामान्य ज्ञान होना अनिवार्य समझा जाता था। कवि ने स्वयं अपना अनुभव इस पद्य में व्यक्त किया है—

पूत जनम्म हुए पिता पूछत गेहथी ऊठी उपासरे आई।
दीहरु आधी राति ही वेर तिथी वार नक्षत्र लगन्न सोझाई॥
कहो केती ग्रय दीपक किहां हुतो सिरां पगां मोचाकी दिसि बताई।
जैचंद जन्मोत्तरी लिख्यां दियै नाले ठांमर ही सात सुपारि दिवाई।

दर्शन

यहाँ दर्शन शब्द से तत्वज्ञान का तात्पर्य नहीं है। यहाँ तो विभिन्न मत-मतान्तर से इस शब्द का संबंध जोड़ा गया है। जैचंद ने सर्व-दर्शन गीत लिखा है जिसमें भिन्न-भिन्न मतावलंबी साधुओं के वेश और उनके आचारहीन जीवन पर कड़ा व्यंग कसा है। रामानंदी, कबीरपंथी, निरंजनी, नानकपथी, रैदासी, संन्यासी, दादूपंथी, नागा, दशनामी, नाथपंथी, जोगी, सूफी, जंदा, गूदड़िये, लिंगायत और वाममार्गी आदि-आदि। अंत में कतिपय पंथ पर अपनी निजी व्याख्या इस प्रकार दी है—

१. योगी वही जो योग में मस्त रहता है
२. संन्यासी वही जो सत्त को धारण करता है
३. ब्राह्मण वही जो ब्रह्मचर्य का पालन करता है

४. भगत वही जो भगोपासना से दूर रहता है
५. जंदा वही जो जीव की रक्षा करता है
६. यति वही जो पांच इंद्रियों का दमन करता है
७. मुसलमान वही जो दूसरे को कष्ट न पहुँचावे
८. तुरक वही जो कभी ताता न हो—क्रोध न करे
९. विष्णुई वही जो विषय वासना से दूर रहे
१०. महाजन और साह वही जो दुर्भिक्ष में अन्न संचय न करे और जीव की रक्षा करे।

कवि का तात्पर्य यह है कि सर्व दर्शन के साधु अपने उदर की चिंता में ही मस्त रहते हैं। आत्मचिंतकों की संख्या बहुत ही अल्प रह गई है। अंत में जगदीश से प्रार्थना की गई है कि ये मत-मतान्तर कब एक होकर तेरे चरणों में नत मस्तक होंगे।

भौगोलिक

यति-मुनियों का जीवन भ्रमणशील रहने के कारण स्वभावतः उनका भौगोलिक ज्ञान बढ़ा चढ़ा रहता है। कवि की इस विषय पर कोई स्वतंत्र कृति नहीं है, पर कुछ स्थानों का अपना निजी अनुभव स्फुट पद्यों में व्यक्त कर दिया है। देवगढ़, वीलावास, पाली और मालवा पर जो छंद हैं वे यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं।

देवगढ़

यह नगर उदयपुर से उत्तर-पूर्व साठवें मील पर अवस्थित है। वहाँ के शासक रावत कहलाते हैं। सं० १७४८ में महाराणा जयसिंह ने इसे द्वारकादास को इनायत किया था। इसमें अधिकतर उन दिनों मेर और वेद लोगों का निवास था, जो ठग विद्या में परम निपुण थे। ये जोगी आदि का वेश वनाकर दूर-दूर तक जा कर अपनी विद्या का सफल परीक्षण किया करते थे। पता नहीं आज यह परम्परा सुरक्षित है या नहीं? देवगढ़ पर ये पद्य कवि ने लिखे हैं—

देवगढ़ें द्वारिकादास चूँडावत हुआ चावा
माधौ हूओ मारको ठांम ऊमा रापतौ मेरांनै ठावा
मूआ ते पूरा आउ संग्रामसिंघ तेग संवाही
मेली फौज करि कटक मेवाड पति देषि रंज्या मन मांही
मदारिया रो वर करार पडगणो देई राउत थपीयो
देवकर्ण सार्थे दल देइने वनोर थांणों अपीयौ

सईको

ठगों पर—

लाज हीण लालचो लाफर लोभी ललचावै
ठग ठावा ठेकाल लोकांने मूसी द्रव्य ल्यावै
चोहटे धावा चोर सर्व जग मुसै वेसासो
नहीं विवेक विचार जतो देयो जाए नासो
दया दत धर्म नहीं देवगढ़ ढूंढ़िया ठग मेर ढूंढसी
वैद मेर जोगीसैं विणजतां वाणीयां तिणै पापैं डूबसी
मारवाड मेवाड रो पूठी मदारियै रा पहगणा माठ
चोर जार जूआर मीर मेरनैं माठ
लाफर लोक लडाक देसरा ठग धूतारा
पासीगर पिण मांहि लोभी लालचो लूटारा
दीन धर्म दया नहीं धरतीयै फिरै जोगी भोंदा भगत रूपैं करी
माल ठग ल्यावै परदेश थी तिके लाभै इण देवगढ़पुरी

दोहा

माणस मदारीयै पहगणैं मांहि मेरांरी मति लागा
चोरी करी वन में वसी जाई तनै न रापै तागा
लाहडीयै सहु लोक लुगाई देवगढ़ रा नागा
देव गुरु री दरसण देवै मेरां रैं भो भागा
चोरी गांठडी प्यार ठाकुरीयै ठिवक वाहिरैं
वाणीय न विवेक विचार दया धर्म नहीं देवगढ़े

वीलावास में कवि ने कई चातुर्मास व्यतीत किये थे। नवकार वत्तीसी और कई स्तुतियाँ भी यहीं पर रची थीं। वहाँ के गृहस्थों का चित्र इन पद्यों में प्रस्तुत किया है—

वीलावास में वाणीयै नहीं त्रिवेक विचार
जतीयां री जाणें नहीं रीति भांति आचार
वाणीयाणी वीलावास री पूरी भरीनें वाथ
पईसा भर री पातली एक रोटी दै हाथ
वीलावास का वाणीयां मसकरी करै घरी
रोटी दोटी विनरती दिये पाहाडिया पटावरी
चोधरी मुंदे चतुर करै चाकरी सउ घर सारा
जोमैं तीयार साह चले आंणै माथै मारा
पांणी आंणै कुमार आंणै केई माथे मारा

वावै वारै मास गोहूँ मे मंटूओ कूरो चिणां वाजरी ज्वारी
वावै ऊपणी न तूरी
दीये करसां भणो घांनवधि राति दांधि पावै सको
वेकार गांमं वीलावास जोई सुणैं न वपांण आई न को

मालवा—

मालवा कवि को वहुत ही उत्तम देश प्रतीत होता था, कारण कि जव कभी राजस्थान को दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ता था तो रक्षा मालवा ही करता था, तात्पर्य जनता वहां जाकर अपने दुख के दिन विता आती थी। मालवा पर कवि के ये पद्य हैं—

मालवा मेह वहुला हुवै तिणे करि धांन धोणे सहु धापै
माल मकई ज्वारिकी धाटीय पावत मर्द कें काम व्यापै
पेटकी दूध वली तन रोग ही भोजगणो मग कोई न संतापै
जैचंद जुगति सारैह माल है अधिको इक दांम न किसी के आपै
जड़ी वूंटी अन्न उपध उपजै मालवै वहु मेह हुआं उगाजा
जांघीयो पहिरि फिरै सव जांन में कोई करैन्हो किसी ही की लाजा
वीज ही मांडिकै साहै में जीमत परोसत सव ही कूँ लाडू इक पाजा
वींद को वाप भोजग भणीं परवाह दे—जु धींगला तीन ही ताजा

नैतिक उपदेश—

दैनिक प्रवचन यति-मुनियों के जीवन का एक आवश्यक अंग रहा है। इस प्रकार के उपदेशों का अधिकारी वही हो सकता है कि जो शील, सत्यादि के उच्चतम नियमों का जीवन में परिपालन करता रहा हो। जयचंद ने कवित्त और सवैया वावनियों में तथा अन्य स्फुट पद्यों में सत्य, शील, सदाचार, पारस्परिक प्रीति, मित्रता, विश्ववंधुत्व, दया, दान आदि अनेक विषयों का प्रतिपादन करते हुए नैतिक-जीवन यापन करने का उपदेश दिया है। उस समय जो व्यापारिक अनाचार प्रचलित थे उसकी तो कटु शब्दों में भर्त्सना की है। यतियों के आचार में जो परिस्थितिजन्य शैथिल्य प्रविष्ट हो गया था, वह भी कवि को कतई पसंद न था। कवि अपनी समस्त कृतियों में वार-वार संकेत करता आया है कि सं० १७३५ के वाद तो समय ने ऐसी करवट ली कि वंचक और सज्जनों में कोई अंतर ही नहीं रह गया था। अतः सूचित समय के वाद कवि ने नैतिकता पर वहुत अधिक जोर दिया है। कवि का मानना था कि मुगलों के आक्रमण और सत्ता हथियाने की परम्परा ने मनुष्य को इतना निर्दय वना दिया था कि वह अपने अल्प स्वार्थ के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाता था।

स्तुति—

यों तो इस शीर्षक में आने वाली रचनाएं स्तवन हैं, पर विशेष उल्लेखनीय हैं गुरु स्तुतियां। खरतरगच्छ के प्रभावक आचार्य श्री जिनदत्तसूरि और कवि की शाखा के आद्याचार्य श्री कीर्तिरत्नसूरि की स्तुतियाँ उपलब्ध हैं। इनमें से केवल उदाहरण स्वरूप कीर्तिरत्नसूरि की स्तुति ही यहाँ दी जा रही है—

ओस वंश उद्योत मेहेवै नगर मोटा
संखवाल कोचर साह आपमल्ल दे मोटा
चतुर सुत च्यारि लखो मादो केलो देलो
श्रीजिनवर्द्धनसूरीश कीर्तिराज दीख्यो इकेलो
सूरिमंत्र धर्यो सताणवै कीर्तिरत्नसूरि कहीजोयै
जयविमल, वाचक सुख जस प्रबल प्रताप वपांणीयै

आलोचना—

कवि का सीधा सम्बन्ध जैन व्यापारियों से पड़ता था, कारण कि उन्हीं के ये गुरु माने जाते थे। पर कवि की प्रवृत्ति ऐसी मस्त थी कि उन्हें भी खरी-खरी सुनाने में चूकते नहीं थे। अपने स्वाभिमान को जहाँ थोड़ी भी ठेस पहुंची कि कवि ने उसे तत्काल कविता का रूप दिया। जो बनिये थोड़ी बहुत जानकारी के आधार पर यतियों पर अपना प्रभाव जमाने का दुष्प्रयत्न करते थे उन्हें लक्षित कर कवि कहता है—

वड़ाई करै वाणीयो दे इक रोटी राज
जतियां नै जाचक गिणे करावै घरनां काज

कभी भोजन की असुविधा भी याचक जीवन में हो ही जाती है, पर इसे भी कवि कहाँ बर्दाश्त कर पाता है। देखिये—

आवै जती आदेश खरतर श्री पूजरे केई
छिपीया रहै चौमासी नहीं—दही दूध कदेई
पोसा पापी समच्छरी लाहाण टका दे जतियां ने ले देई
पोथा पारणां न बाणै.... ....
पछेवड़ो निमित पांच रुपीया रा टक्का आवै जतीयां रै चौमासे रह्यां
घी लेई जीमें गांठरो श्रावक पुसी हुवै जैनके
पजूसणें पोसो पारणों कोई ने किवार
पूरी न दे पछेवडी दे लूणा आहार

कवि स्वयं अपने यतियों को सुनाने में पश्चात्पद न रहे—

जती री झाले स्वांग उघा मुंहपति पातरा धार
नावै परी नवकार माथे पटीया वाली वाल संवारै

घी रोटा एकलो आंणी पाई सूई रहै दिन सारो
फिर्यो करै वली वात मचेज्यु गाधो आरो
लोग लुगाई पूछै सउओद देपिने मिलै ज्यु बोछड्या
जाणु सार जती कहै आवो ऊभा रहै इणि घड्यां

कवि ने परिस्थिति-जन्य मुनि-समाज के शैथिल्य की ओर तथा व्यवसायियों पर भी कटु व्यंग कसे हैं। कहने का तात्पर्य कि वह अपनी मस्त तबियत के कारण किसी को भी कुछ कहने में संकोच नहीं करता, यह कवि की विशेषता है।

जयचंद लोक-साहित्य का अनन्य अनुरागी था, वह एक स्थान पर सूचित करता है कि साधु लोग पृथ्वीराज रासो, कृष्ण रुक्मिणी की वेलि, नाग-दमण, पंचाख्यान, हरिरस आदि का वांचन क्यों नहीं करते। इसका तात्पर्य यह जान पड़ता है कि कवि तात्कालिक प्रचलित लोक-साहित्य से पूर्णतया परिचित था और इसने खुद ने भी हितोपदेश का अनुवाद किया था, दुर्भाग्य से उसका थोड़ा ही भाग मिल सका। कवि का अनुभव विस्तृत और सर्वतोमुखी था। ज्योतिष, धर्मशास्त्र, इतिहास, नीति और विभिन्न प्रासंगिक विषयों पर अपने विचार प्रस्तुत कर तात्कालिक स्थिति का जितना परिचय दे सकता था, कवि ने दिया है।

कवित्त बावनी रचना काल सं० १७३० मिगसर पूर्णिमा सेरुणां मध्ये

आदि—

अथ कवित्त बावनी लिप्यत
आदि शकति ओंकार अक्षर ओंकार कहावै
आदि पुरुप करि उकति अष्यर बावन्न बणावै
भले धुरैं ब्रह्मा विष्णु महेश शिवमतो एक करि ध्यायो
मंत्र यंत्रकै मूल छै ग्यांन रूप ओहिज अकल
जैचंद सवि पावै युगति सिद्धि रिद्धि ईप्सित सकल

अंत—

संवत सतरसे तीस मास मिगसिर तिथि पूनिम
सेरुणे सहर सुठांम अधिक मन आंणी उद्यम
कीरतिरतनसूरि साप गच्छ परतरैश सवाई
वाचक विनैराज सकल जपेंगे सोभा पाई
वाचक सकलहर्ष गणि प्रवर जैचंद.......करी
बावन्ने कविते रसिक वर्णवि सहु वसुधा वरी
इति श्रीकवित बावनी संपूर्ण

लिपिकृतं वाचक श्रीजयविमल गणिभिः शिष्य षेता रामचंद्र राजा रतना ठाकुर वाचनार्थं ॥

सवैया बावनी रचनाकाल सं० १७३३ जोधपुर जसवंतसिंह राज्ये

आदि—

ओंकार उदार अगम्य अपार जाको सिव विरंचि हो न पायो पार
भारती मात वणाय कीयो सब बावन्न अष्यर मांहि समायो
पंच परमेष्ट वसै तेह मांहिज मंत यंत तंत हो कै धुरि ध्यायो
तेह को आंन शिरें नित धारत वाचत जयचंद तेज सवायो

अंत—

क्षमाको अंकुर कोरतिरतन्नसूरि हरषविशाल आदि बुद्धिचो निधांनजू
लवधिकल्लोल जानि ललितकोरति वांनि पाठक पदवी प्रधान सहू दे सनमांनजू
वाचक विनैराज सकलहरप्य काज राज प्रजा सुप साज सारेई जिहांनजू
वाचक पदवी धार जैविमल जयकार आणंद लीला अपार मांनें राव रांणजू ७३
सति सतरै तेतीस आ''''नौमि दीस राजा जसमंत इसें जोधपुर रटीजीयें
बावन्न वणाई—सहु भणी आवें दाई उकति ऐसी उपाई सुजस लहीयें
''''''परतर गण धीर अडसठे पाटें उदार जिनचंदसूरि आंण''''होजीयें
सकलहरप चित घणें भगवत हित भजि—ज्ञ उठि नित जैचंद बावनो कहीजीयें ७४

इति सवैया बावन्नी संपूर्ण

लिपिकृता जयविमलगणिभिः—शिष्यादि वाचनार्थ

ऋषभ स्तवन रचना काल सं० १७६३ चैत्री पूर्णिमा

आदि—

चूडलै जोवन झिल रहीयो ए देशी
आदि करण अलवेसर नाभि नंदन जयकार हो जिनजी
मरुदेवी माता तणां अंगज सकल उदार हो जिनजी

अंत—

परतरगच्छ में दीपता कीरतिरतनसूरीश हो जिनजी
सकलहरष गुरु सांनिधे पमणे धरीय जगीस हो जिनजी
संवत सतर तेसठि समे चैत्री पूनिम धरि चित्त हो जिनजी
जयविमल वाचक कहै भेट्यां अति घणे हित हो जिनजी

इस स्तवन में आबू, सादड़ी, ईडर, रांणकपुर, देवारी, सविनाखेडा, जावर, सिसार, देलवाडा, घूलेवा, अहमदाबाद, वांसवाडा, सागवाडा, डूंगरपुर आदि नगरों का उल्लेख किया गया है। कवि ने इसी संवत में रांणकपुर का भी स्वतंत्र वर्णन प्रस्तुत करने वाला स्तवन लिखा है, जिसमें बीकानेर के भांडाशाह के मंदिर का भी वर्णन यथोचित प्रसंग पर कर दिया है।

नवकार वत्तीसी रचना काल सं० १७६५ वीलावास

आदि—

परपद वैसे वार सुजांन अगनित ऋत वायव ईशांन
गणवर विमांन देवीया भणो साववो अगनि कूणें पुणो

अंत—

परतरगच्छ में गुण छतीस धारक कीरतिरतनसूरीस
ललितकीरति पाठक पद वार निरमल चित जपो नवकार ३१
विनैराज वाचक तासु सीस वाचक सकलहर्ष सुजगीस
जयविमल वाचक सुविचार निरमल चित जपो नवकार ३२
संवत सतरै पैसठै सार पोप दशमी दीह शुभ भृगुवार
कीधी वत्तीसी ए हितकार निरमल चित्त जपो नवकार
मारूवाडि सोझित पापती देव भुवन सुपसायें छती
वीलावास नगर सुपकार निरमल चित्त जपो नवकार
भणै गुणै वलि सांभलै जेह वावै तिण घरि लच्छि अछेह
आणंद हरप हुवै अधिकार निरमल चित्त जपो नवकार

इति नवकार वत्तीसी समाप्ता

सर्व दर्शनी गीत

आदि—

संतो सगलै मांडी पेट भराई नहीं मन में नरमाई १
सुणिज्यो लोग लुगाई कहो किण अकल उपाई
सन्यासी हुई जटा ववारै भगत सु घुरड मुंडावे
जोगी छुरी सुं कांन फडावै परमेसर किस पै जावै २

अंत—

परतरगच्छे आचारिज पद धारी करतिरतनसूरि सोहै
संपवाल कुल मंडण जांणो भवि जननां मन मोहै ३८
विनयराज वाचक तेहनी साथें वाचक सकलहर्ष सदाई
तसु सांनिधि जस दिन-दिन दीपै वाचक पदवी पाई ३९
जती जैचंद कहै समझाई भज्यां.............................
....दिन-दिन संपद पाई ४०

इति सर्व दर्शन गीत संपूर्ण

ज्योतिष कवित्त
आदि

अथ ज्योतिष कवित्त लिख्यते

वर श्री मात सरस्वती वीनति करूं चरणें लागी
वलि प्रणम्यां गुरु देव दूरि सहू भावठि भांगी
श्रीजिन पदपंकज्ज भेट्यां हुवै लील विलास दिनाई
दुक्ख सहु दूरैं जाई जावै रिपु सिद्धि बडाई
जोतिष क्षीर सागर मथी सार संग्रह लीजीयैं
जैचंद कहै जोडुं सुगम विस्तार वांणी कीजीयैं १

दूहो

रवि शशि मंगल बुध गुरु शुक्र शनि जांणीइ
साते वार दे सिद्धि जयचंद कहै चढती कला २

इति कृति के आगे के पत्रे दीमक से इतने प्रभावित है कि शीघ्रता वश खोले न जा सके।

इसके अतिरिक्त सीता स्वाध्याय आदि कई स्तवन-स्तुतियाँ, प्रासंगिक दोहरे-दोहे कवित्त और छप्पय आदि रचनाएँ मिलती हैं जिनकी आनुमानिक संख्या लगभग २००–२५० है।

प्रति परिचय—जिस गुटके—हस्तलिखित प्रति—में उपर्युक्त समस्त रचनाएँ आलेखित हैं उसका आकार-प्रकार ६ × ४ इंच है एवं अनुमानतः पत्र संख्या १५० से ऊपर है, प्रत्येक पत्र में १४ से १६ पंक्तियां हैं, लेखक ने लिखने का समय सूचित नहीं किया है परन्तु सम्पूर्ण हस्तलेख कवि ने ही भिन्न-भिन्न समय में अपने हाथ से लिखा है, अनेक स्थानों पर इसको स्पष्टता कवि स्वयं कर चुका है, जब-जब कवि के हृदय में विचार उठा तत्काल उसने लिपिबद्ध कर दिया, कहीं-कहीं उसने अपनी ही कविता को अपने हाथ से संशोधित, परिवर्तित और परिवर्द्धित भी कर दिया है, जैसे सईकी, सवैया बावनी और कवित्त बावनी के विषय को व ऐतिहासिक संकेतात्मक घटना को अधिक स्पष्ट करना पड़ा है वहाँ हाशिये पर सूक्ष्माक्षरों में कई नूतन पद्य भी लिखे हैं, कहीं-कहीं एक ही भाव पर कविता लिखने के अनन्तर यदि उसी विषय पर भव्य कल्पना प्रस्फुटित हुई तो कवि ने उसी के आस-पास ही उसका पाठन तक भी दे दिया है, यदि प्रत्येक भावमूलक पाठान्तर पर विचार किया जाय तो कवि हृदय में उठने वाले विचारों के अन्तस्तल तक सरलतया पहुँचा जा सकता है, भले ही उस परिवर्तन की पृष्ठभूमि में कोई भी परिस्थिति रही हो।

यह हस्तलिखित प्रति-गुटका-कवि की आवश्यक ज्ञातव्य की दैनंदिनी का काम देता है क्योंकि इसमें कथित रचनाओं के अतिरिक्त ज्योतिप विपयक आवश्यक टिप्पण, आयुर्वेद के परीक्षित प्रयोग और तात्कालिक इतिहास से सम्बद्ध महत्वपूर्ण घटनाएँ इसमें विस्तार से अंकित हैं, साथ ही कवि को विभिन्न नगरों के श्रावकों द्वारा समय-समय पर जो भी सहायता मिलती रही, उन गृहस्थों की एक सूची भी दी हुई है।

गुटका किसी समय सजिल्द रहा होगा, आज भी स्थिति उतनी बुरी नहीं है पर, वर्षों तक असावधान अवस्था में रहने के कारण कहीं कहीं वह इस प्रकार उदई द्वारा भक्षित हो गया है और अत्यधिक शीत के कारण ऐसा चिपक गया था कि उसे सावधानीपूर्वक एक एक पत्र अलग करने के वावजूद भी मूल्यवान् पत्रों में हमें वंचित रहना पड़ा। आवश्यकता से अधिक शीत लगने से कहीं स्याही एक दूसरे पत्रों से चिपक गई थी तो कहीं जीर्ण-शीर्ण पत्र उखाड़ते समय फट गए। प्रसन्नता केवल इस वात की है कि यह महत्वपूर्ण सामग्री कवि के कर-कमलों से अंकित सुरक्षित मिल गई जिससे कवि के हस्ताक्षर एवं कहीं-कहीं लेखन-कला भी दृष्टिगत हुई। यही एकमात्र प्रति शेप है जो कवि की कीर्ति-लताको संजोए हुए है, कहने को आवश्यकता नहीं कि इस गुटके के अतिरिक्त कहीं भी कवि का उल्लेख तक प्राप्त नहीं है।

आभार

प्रस्तुत सईकी एवं जयचन्द्र या जयविमल की अन्य समस्त रचनाओं को सुरक्षित रखने का श्रेय शाहपुरा निवासी डा० श्री वृजमोहनजी जावलिया को प्राप्त है, उन्हीं की कृपा से मुझे वह गुटका पत्र अलग करने तथा अध्ययन के लिए प्राप्त हुआ था, तदर्थ अन्तःकरणपूर्वक उन्हें धन्यवाद देना आवश्यक है।

सईकी की आवश्यक विवेचना तैयार होने के वाद इसे तात्कालिक इतिहास और परम्परा के विशेषज्ञ—(तात्कालिक महाराजकुमार)—डा० श्री रघुवीर-सिंहजी सीतामऊ के पास प्रेषित की गई, आपने इसे आद्योपान्त पढ़कर आवश्यक सुझाव देकर इन पंक्तियों के लेखक को लाभान्वित ही नहीं किया, अपितु, औदार्यपूर्वक इसकी भूमिका लिखने का भी अनुग्रह किया, तदर्थ उनके प्रति आभार के लिए किन शब्दों को प्रयोग किया जाय।

जयपुर निवासी और वम्वई प्रवासी श्री छुट्टनलालजी वैराठी ने ज्ञान-भक्ति के महत्व को समझ कर इसे प्रकाशन के लिए उदारतापूर्वक जो सहायता प्रदान की है और भविष्य में ऐसी ही ऐतिहासिक कृतियों के प्रकाशनार्थ जो उत्साह व तैयारी वताई है तदर्थ वे भी धन्यवाद के पात्र हैं। आपने अपने पिताजी के नाम

से ग्रंथमाला ही प्रारम्भ करना स्वीकार किया है ताकि इसमें लोकोपयोगी साहित्य प्रकाशित किया जा सके।

यद्यपि सईकी का प्रकाशन कुछ मास पूर्व ही हो जाना चाहिए था किन्तु शारीरिक अस्वस्थता के कारण ऐसा न हो सका।

अन्त में श्री मोतीलालजी भडकतिया को भी शतशः धन्यवाद दिए बिना नहीं रहा जा सकता जो समय-समय पर निस्वार्थभावेन मेरी साहित्य-साधना में सहयोग प्रदान करने को सदैव तत्पर रहते हैं।

परमपूज्य मुनिवर श्री मंगलसागरजी महाराज साहब, जो मेरे ज्येष्ठ गुरु बन्धु हैं, को विस्मृत नहीं कर सकता जिनकी अनुभवमूलक साधना से मुझे अपने जीवन-निर्माण में पर्याप्त साहाय्य प्राप्त हुआ है।

३१ मार्च १९७० मुनि कान्तिसागर
शिवजीराम भवन
कुन्दीगरों का भैंरू
जयपुर–३ (राज०)

यति श्री जयचंद विरचित

स ई की

प्राप्तांश

..............................ण[1] पतिसाहसाहिजिहां री वरती ॥
राज लिप्यौ रांण राजसिंघ[2] रे फिरि कटक पाछौ गयौ।
सीसोदां में सिरि धणी थांनक उदैपुर थयौ ॥७॥

---

१. इस पद्यका अंतिम अंश इतना ही प्राप्त है जिसका तात्पर्य है बादशाह शाहजहांकी आंण-आज्ञा यथावत् बनी रही, पर विषय संदर्भ लुप्त है। उस समयकी ऐतिहासिक साधन-सामग्रीके निरीक्षणसे अनुमित है कि सं० १७११ में एक विशाल सेना शाहजहांने चितौड़पर भेजी थी क्योंकि महाराणा राजसिंहने सिंहासनारूढ़ होते ही अपने पिता जगतसिंह द्वारा प्रारंभीकृत चित्तौड़ के दुर्गका जीर्णोद्धार शीघ्र करवाना जारी किया, जब कि सं० १६७१में खुर्रम और मेवाड़से जो संधि हुई थी उसमें एक शर्त यह भी थी कि महाराणा चित्तौड़ दुर्गकी मरम्मत न करवा सकेंगे। जगतसिंहके समयमें जो जीर्णोद्धारका काम चल रहा था, शाहजहां उससे अपरिचित नहीं था, पर वह उपेक्षा करता रहा। सं० १७११में राजसिंहने बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य किया और सेनासे संघर्ष न कर क्षमा-याचना कर लेना ही समुचित समझा। विवशता थी। संभव है कवि जयचंद ने लुप्त भाग में इसी तथ्यकी ओर संकेत किया हो। "राज लिप्यौ रांण राजसिंह रे फिरि कटक पाछौ गयौ" "यह पद्यांश भी उपर्युक्त तथ्य की ओर ही संकेत कर रहा है।

२. राजसिंह महाराणा जगतसिंह (राज्य काल सं० १६८४-१७०९) के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६८६में कार्तिक कृष्णा चतुर्थीको हुआ था। सं० १७०९ कार्तिक कृष्णा चतुर्थी को मेवाड़के सिंहासनारूढ़ हुए। पिताके समान वीर, पराक्रमी और मुगल द्वेषी थे। हिन्दू संस्कृति और धर्मके प्रति अति आस्थावान् होनेके कारण मुगल शासकोंके परम विरोधी थे, पर राजनीतिक कारणवश कभी-कभी संधियां भी करनी पड़ती थी, पर उनमें स्थिरता

नै पनरौत्तरै ताकि	मालपुरो मार्यौ फाब्र ।
ष्वाजे उपरा पेस	अजमेर न गयो उदास ॥
धांन वालीया पड्यौ दुकाल	प्रजा लोक पीडांणा सारा ।
दुषी हुआ वरस तीन	भूपां मरतां माणस विकाणा ॥
राणैं राजसिंह पत्तिसाह सुं	करि रीस लोकां रा घर लूंटिया ।
मान न लियौ पातसाह रो	कही किण ही ने कूटीया ॥८॥
दक्षिण सोंचै ताकि	औरंगजेब[२] औरंगाबादै ।
लाप घोडां ने लेई	साझीं धरतौ साहिज़ादै ॥

नहीं आ पाती थी। शाहजहांके राज्यकालमें इनने कुछ ऐसे कार्य किये जिससे वह इनसे संतुष्ट नहीं था। आगे चलकर औरंगजेब भी मन ही मन इनसे बहुत अप्रसन्न रहा करता था, पर था वह चतुर राजनीतिज्ञ। अतः अनेकवार इनके अपराधोंकी बाहरी मनसे उपेक्षा भी कर दिया करता था। समय आने पर प्रतिशोध लेने भी में चूकता नहीं था।

१. सं० १७१५ वैशाख शुक्ल १०को राजसिंहने उदयपुरसे प्रस्थान कर बादशाह और तदनुयायियों के परगनें लूटे एवम् उन पर अपना अधिकार कायम किया। मांडल, पुर और आगरा आदि प्रमुख थे। क्रमशः वह मालपुरा पहुँचा, जो उन दिनों संपन्न नगर गिना जाता था, वहां ९ दिन रहकर न केवल लूट-खसोट ही चलाई, अपितु, विरोधियोंको पीटा तथा अनाज जला दिया। शाहजहांकी तनिक भी पर्वाह नहीं की। इस घटनाका उल्लेख वेसवाड़की सरायके समीपस्थ वापिकाके आलेमें लगे संवत् १७२५के फतेचंदवाले शिलोत्कीर्ण लेख (वीर विनोद पृष्ठ ३८१) एवम् "राजप्रशस्ति" में पाया जाता है—

भवान् मालपुरे रान लक्ष्मीमालाति लूंटनं ।
शौर्यलोके रचितवाल्लौकैर्नवादिनावधि ॥ सर्ग ७, श्लोक ३१ ।

× × ×

वन्हें मालपुरस्थभौपधमयं होमीकृतं सृष्टवा-
न्यन्येखांडवमेपपांडव इव श्रीराजसिंहो नृपः ॥ सर्ग ७, श्लोक ४१ ।

२. सं० १७१५ में शाहजहांका स्वास्थ्य एकाएक इतना खराब हो गया कि उसने दरबारमें आना बंद कर दिया था, अधिकारी वर्गसे भी संपर्क सीमित हो चला था। जनतामें इनके संबंधमें विभिन्न प्रकारकी ग़लतफ़हमियां फैली हुई थीं। यहां तक कि विरोधियोंने यह बात फैला दी कि शाहजहांका अव-

मुरादबकस भड़ भींछ गुजराती रै गिणीयौ थांणै ।
साह सूजो पूरब्ब बात वदीती राउ रांणै ॥
ध्रुं टीको दारा साह नैं साहिजिहां चित्त विचारीयौ ।
तीनी साहज़ादा मिलि आवीया पतिसाह रो मांन उतारीयौ ॥९॥

सान हो गया। ऐसी स्थितिमें दारा इन्हें जमना मार्गसे आगरा ले आया। पिताकी डांवांडोल हालतके संवाद दक्षिणमें औरंगजेबके पास भी पहुँच रहे थे। वह विशाल सेनाके साथ उत्तरभारतको प्रस्थित हुआ। गुजरातके सूबेदार शाहजादा मुरादने अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया। यही कार्य बंगालके सूबेदार शाहजादा शुजाने किया और वह कटक लेकर दिल्ली-आगराकी ओर रवाना हुआ। मुरादको औरंगजेबने बादशाहतका लालच देकर अपने पास मालवा बुलवा लिया। इधर शाहजहां दाराको शासन सत्ता विधिवत् सौंपनेका पूर्ण निश्चय कर चुका था। दारा और औरंगजेबमें पर्याप्त विरोध था। दाराका झुकाव वेदान्तकी ओर अधिक रहनेसे भी औरंगजेब इसे आधा काफिर मानता था। उसे भय था कि दाराको सिंहासन मिल जायगा तो इस्लाम खतरेमें पड़ जायगा। यह समय मुगल साम्राज्यके लिये भ्रातृयुद्धका था। सभी शाहजादे राज्यसत्ता हथियानेके प्रयत्नमें रत थे।

कवि जयचंदने "तीनो साहिजादा मिली आवीया"का जो उल्लेख किया है वह भ्रान्तिपूर्ण है। एक ओर तो वह लिखता है कि "साह सुजो पुरब्ब" और उसी सांसमें वह यह भी लिखता है कि "सूजो हुतो साथे" (पद्य ११) शुजा भी साथ था। ऐतिहासिक सत्य तो यह है कि शुजाको बंगालमें विद्रोह दबानेके लिये दाराने अपने पुत्र सुलेमान शिकोहको आंबेरवाले मिर्जा राजा जयसिंहके साथ पूर्वकी ओर भेजा था जिसका उल्लेख समसामयिक कृति—"वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री महेसदासोत री खिड़िया जगा री कही"—में इस प्रकार मिलता है—

धर पूरब सुज्जो धणी दखिणी तरी दुगाम

× × ×

सुज्जा दिसि जैसिंघ सझि दुज्जो मांन दुबाह ।
पांनो साथे परठियौ पूरब धर पतिसाह ॥

शुजासे बनारसके पास बहादुरपुरमें इन दोनोंकी मुठभेड़ हुई और वह मुंगेर भाग गया। बादशाह बननेके बाद औरंगजेबने मीर जुमलाको शुजा

साहिजिहां पतिसाह कह्यो जसवंतसिंघ[1] बुलाई ।
लेई फौज रोकि राह साहज़ादां रै साम्हौ जाई ॥

पर नियुक्त किया था । बादशाह स्वयं भी बंगाल जाने को तैयार हो गया था, पर शमसाबादसे वापस लौट गया । क्रमश शूजा ढाका होकर आराकान गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई । कविने शुजाका उल्लेख भ्रान्तिवश कर दिया हो ।

१. दारा और शाहजहांको विदित हुआ कि औरंगज़ेब विशाल सेना लिये उत्तर-भारतकी ओर आ रहा है तो चिंतित हुए, क्योंकि वे औरंगज़ेबकी प्रकृतिसे भलीभांति परिचित थे । अतः जोधपुर नरेश जसवंतसिंहको मालवाकी ओर ससैन्य रवाना किया और समझा दिया कि शाहज़ादेको रोका जाय और अनिवार्य स्थितिमें ही युद्ध किया जाय । इस प्रस्थानका खिडिया जगाने अपनी वचनिकामें भावपूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया है । बताया गया है कि शुजाके लिये तो दो दो सेनापति भेजे गये हैं और दो शाहज़ादोंके विरुद्ध एकाकी जसवंतसिंहको ही ।

सुज्जा दिसि जैंसिंघ सझि दुज्जौ मान दुवाह ।
पोती साथै परठियौ पूरब घर पतिसाह ॥
साहिजादां विहुं सांमुहौ एक जसौ अणभंग ।
मांडण असपति मांडियौ जोध कलोवर जंग ॥

वचनिका

मार्गमें जाते हुए कई बाधाएँ आईं पर जसवंतसिंहने उनकी पर्वाह नहीं की । किसीको सरपाव, किसीको मौलिक आश्वासन देता हुआ वह चला जा रहा था, लक्षित स्थान पर । जिस प्रकार औरंगज़ेबकी सेनामें मुराद आकर मिला उसी प्रकार जसवंतसिंहकी सेनामें कासिमखां आ मिला । उज्जैनसे १४ मील दक्षिण पश्चिम धरमत क्षेत्रमें पड़ाव डाला । संध्या होते-होते शत्रु सेना भी आ पहुँची । जसवंतसिंह ने अब भी यत्न किया कि युद्ध न हो, शाह-ज़ादोंको समझाया, पर परिणाम विपरीत ही आया और संग्राम अनिवार्य हो गया । जसवंतसिंहका कथन था कि जहांसे शाहज़ादे आये हैं उसी स्थान पर लौट जांय, पर ऐसा न हुआ ।

मेरे संग्रहस्थ "राठौड़ वंशावली"में जसवंतसिंह—कीर्त्ति इन शब्दोंमें गाई है—

हाथी घोड़ा हसम्म सरपाव देई साम्हौ हटायौ ।
आयौ पंडे ऊजेण मन में अभिमांन भरायौ ॥
पाछा जाओ जिहां हुंता किण रै हुकम सुं आवीया ।
इम जसवंतसिंघ उच्चरै जगि सहूनां कांन जगावीया॥१०॥

मेल्ही साह फुरमांण तेड़ जसवंत बहादर ।
तुं अविचल नवकोट जाम ससि सूर नृमनर ॥
दे टीकौ सैं हत्थ दे नौवति नव वाजा ।
दे सिंघासण छत्र नांमि अरि गंजण राजा ॥
धुरि तेण वले जीतो धवल पडगिग झाल अधिक परै ।
जसवंत तपै जोधांणपुर राज पाट गज बंध रै ॥ १ ॥
जांम इंद्र उवरै गांम दिणीयर दरसावै ।
जांम सोम शुभ श्रवे जांम हरनांम पहरावै ॥
जांम नाग वासिग जांम इसर जोगेसर ।
जांम सात समंद जांम धरती गिर अंबर ॥
गज बंध सुतन जोधांनगढ़ जांलग मध जीहां जरो ।
रजवाट सहित सालिम रहो राज घाट जसराज रौ ॥

× × ×

पगां थंभिया पतंगां रंगा सुरंगां बंगा पवंगा उमंगां नारद आया नगां धाया आज ।
भुजंगां लचक्के काया बेहंगां दुरंगा बंगे मुरादा औरंगां लगै जंगा महाराज ॥
बींमर कमधां भड़ां तूटे कंध विज्जु जलां हुवै चहुँवला हाक वीरां रा हवूव ।
सांवलां अभंगां कीधां तुरंगां जसवंतसिंघ मेलियां जरदा बीच पूव महबूव ॥

महाराजा जसवंतसिंह राठौड़ न केवल रणक्षेत्रको ही प्रकंपित करनेकी क्षमता रखते थे, अपितु, परम सारस्वतोपासक और विद्वत्मंडलीके आश्रयदाता भी थे। इनके मंत्री-मंडलमें नेणसी मुंहता जैसे इतिहासके पारखी व्यक्ति विद्यमान थे। महाराजाकी सारस्वतोपासना इन कृतियोंमें अभिव्यक्त हुई है—

भाषाभूषण, आनन्दविलास, अनुभवप्रकाश, अपरोक्षसिद्धान्त, सिद्धान्तबोध, चन्द्रबोध, पूली और जसवंत संवाद आदि।

भाषाभूषण इनकी सर्वाधिक आदर प्राप्त रचना है। कुवलयानंदके अनुकरण से लिखा गया यह लघुतम ग्रंथ अलंकार शास्त्रकी दृष्टिसे बहुत ही महत्वका है। इसपर सात विद्वानोंकी वृत्तियां पाई जाती हैं। इसे कतिपय

औरंगजेब उजेण साह सुजो[1] हुतौ साथे ।
मुरादबकस वडभीर पडीया[2] दारा साह सुं बाथै ॥
पतिसाह रै बोलीयै जोर कर मिलीयौ जसवंत ।
जावा नहीं द्यु लड़ाई कीयै बोल्यौ मूंछ मरोडी बलवंत ॥
कवांण गोसैं थकी अमरस मन सें धरि इसो ।
हैरांन सारो जिहांन हूओ च्यारां[3] सें जीपिस्यै किसो ॥११॥
अकल बहादर औरंग[4] कहै जसवंतसिंघमें जाई ।

विद्वान् चंद्रलोकके समीप मानते हैं परन्तु वस्तुतः वह कुवलयानंदका अनुधावक है ।

दलपति मिश्रने जसवंत उद्योतमें इनकी प्रशस्ति गाई है, संभावना की जाती है कि वही उनके काव्य गुरु थे । ओझाजीने सूरत मिश्रको जसवंतसिंहका काव्य गुरु माना है, पर वह उनका भ्रम ही था । कारण कि सूरत मिश्रका साहित्य साधना काल सं० १७६६-१८०० तकका रहा है जब कि जसवंतसिंहका अवसान सं० १७३५ में ही हो चुका था ।

१. यह उज्जैन युद्धमें औरंगज़ेबके साथ नहीं था । दृष्टव्य पद्य ९ का टिप्पण ।
२. दारा तो युद्धकें समय आगरामें था ।
३. इन च्यारोंसे कविका तात्पर्य दारा, औरंगजेब, मुराद और शुजासे ही जान पड़ता है, पर यह सही नहीं है । उज्जैनमें औरंगज़ेब और मुराद ही थे, दारा आगरामें था और शुजा बंगालकी ओर था, जिसके दमनके लिये दाराका पुत्र सुलेमान और जैसिंह कछवाया भेजे जा चुके थे ।
४. औरंगज़ेबकी झांसेबाज़ी प्रसिद्ध थी । इस अवसर पर भी उसने इसीका प्रयोग करना चाहा, पर जसवंतसिंहके आगे दाव खाली गया । औरंगजेब ने जसवंतसिंहसे कहलवाया कि हम दोनों बादशाहके चरण स्पर्श करके, पुनः दिल्ली जायेंगे परन्तु जसवंतसिंह ने नहीं माना । इन्हीं भावों को खिड़िया जगा ने भी इन शब्दोंमें अपनी वचनिकामें व्यक्त किया है—

औरंगसाह मुराद इम मिलि लिक्खै फुरमाण ।
राज़ा राह म रोकि तूं साह लगै दै जांण ॥
राड़ि म करि इक तरफ रहि आगै पीछै आव ।
जोइ दिली फिरि जाइस्यां परसि असप्पति पाव ॥

इसी भावको रतनरासोकारने विस्तार दिया है । शब्द साम्य से अनुमान होता है कि कवि जयचंदने वचनिकाका पारायण किया था ।

पतिसाह रा फरसां पांव मेला होइ आपें दोई ॥
परधांन ऊधो[1] मेल्हीयो तद ऊरंगजेब रीसें चढ्यौ ।
तिहां साम्ही नालि मांडीनें भरी पईसां सुं मेल्ही लडीयो ॥
रण में रजपूत लप ग्यांनें रह्या जसवंतसिंघ[2] एकण सासीयो ।
असवार आठां सुं नीकली जोधपुर आई विमासीयो ॥१२॥

---

१. प्रधान ऊधाका नाम अन्यत्र नहीं मिलता ।

२. विगड़ती युद्ध-स्थितिसे राव रतन आदि शूरवीर योद्धिकों ने जसवंतसिंहसे विनय की कि आप चले जाइये, हम इस क्षेत्रको संभाल लेंगे । समय पर युद्ध क्षेत्रसे लौट जाना कोई बुरी बात नही है । राजपूत चाहते थे कि वंश-रक्षाके लिये इनका पलायन अनिवार्य है । औरंगजेब जैसे अजेय शत्रुको पराजित करना सामान्य कार्य न था । जैसिंहकी अपेक्षा इनका कार्य अधिक दुष्कर था । सिढ़िया जगाने इस पलायनका निर्वाह अपनी वचनिकामें उत्तम रीतिसे किया है, पर कोटाके किसी कविने इस पर एक पद्य लिखा है जिसमें जसवंतसिंह को बख्शा नही है—यथा

छड़यो पेत उजैण सूं मंडियो न जसौतसिंघ,
औरंग कइ आगई जा की खबरि न गम है ।
हाटै लडे लाडा फौज मरद मुकुन्द कान्ह,
मोहन जुझार भारथम्म रिण रामें है ॥
वरके वारंगीना मुरगपुर कइ गइन लोहन,
किशोरपुर पायो राज तुम्हें ।
हुती नवकोटी सोतो कोठी में समाहि गई,
हुता एक कोटा सा अनेक कोटा सम है ॥

कवि जयचंदने सूचित किया है वह आठ सवारोंको लेकर जोधपुर चला आया ।

इस धरमतके युद्धका प्रामाणिक और विश्वस्त वर्णन "राठोड़ वंशा-वली" (अप्रकाशित, मेरे संग्रहमें है) खिड़िया जगा की "रतनसिंहकी वचनिका" और "कवि कुंभकर्ण रचित" रतन रासो (इसकी एक हस्तलि-खित प्रति मैंने ग्वालियर निवासी स्व० भास्कर रामचंद्र भालेरावजीके संग्रह-में देखी थी) उपलब्ध है ।

हाथी पगे सांकलि रालि ऊभो रह्यौ थिर मन करीनें ।
तुरतु वंध छोडीया सिलहपापर निज तनें धरीनें ॥
मुरादव्रगस[1] मारीयौ सा हीयां सूजौ सिलक्यौ ।
पूठें फौज जाइनें आगेंथी तेहनें अटक्यौ ॥
दारा[2] साहसिफा शुक्त हथिणी वेसीनें नाठा रह्या तिहां मारीया ।
साहिजिहां साह्यौ सहु देपतां औरंगजेब सिरें छत्र धारीया॥१२॥
जसवंत जोधपुर जाई पात्रां पाता री वाली ।
फिरयौ मन सचिंत संत्राहु कोट समीयांणों भाली ॥
द्वारा[3] साह कहै मेरा दोस्त आओ मीर आपें लडीयैं ।
कहयौ कछवाहै जयसिंह आपें किण ही सेती न लडीयैं ।

---

१. शाहज़ादा मुरादके मनमें औरंगज़ेवने ऐसा विश्वास जमा दिया था कि जैसे वही बादशाह होगा। मुराद भी अनुभव कर रहा था कि सिंहासन मुझे मिलनेवाला ही है। औरंगज़ेव भी उसे बादशाह और हज़रत कहने लगा था, पर ज्यों ही अवसर हाथ लगा कि मथुरामें मुरादको मदिरा पिला कर औरंज़ेवने कैद कर मौतके घाट उतार दिया।

२. सामूंगढकी लड़ाईमें दारा हार गया। उसे शाहजहां ने आदेश दिया था कि सुलेमान शिकोहके आने पर ही औरंगज़ेवकी सेनापर आक्रमण करें, पर उसने शीघ्रता कर दी जिसका परिणाम विपरीत आया। विजय औरंगज़ेवकी रही। दाराकी ओरसे इस युद्धमें कोटाके राव शत्रुशाल और किशनगढ़के परमभक्त और कवि रूपसिंह आदि कई वीर खेत रहे। दारा दिल्लीकी ओर भाग गया और औरंगज़ेवका आगराके किलेपर अधिकार हो गया। शाहजहां कैद हुआ और आलमगीर सं० १७१५ में सिंहासनारूढ़ हुआ। यद्यपि वह चतुर्दिक विपत्तियोंके कारण सुखसे तो न रह सका, तुरंत ही दाराका पीछा करनेके लिये दिल्ली की ओर प्रस्थान करना पड़ा!

३. सामूंगढ़ से परास्त होकर दारा कहीं भी स्थिर न रह सका। इधर-उधर भागते हुए सिंध ठट्ठे पहुँचा, वहांका क़िलेदार औरंगज़ेवका श्वसुर था। पुनः वह अहमदाबाद होते हुए राजस्थान पर चढ़ आया और जसवंतसिंहको अपना समझ कर सैनिक सहायतार्थ पत्र लिखा। जसवंतसिंहने एकवार स्वीकार भी किया, पर आंवेरके कछवाहा जयसिंहके कहनेसे उसने दाराका साथ नहीं

छत्र धराई वैसे दिल्ली आंण मानिस्यां जेहनी ।
बैठो तपत पनरोतरै आंण वरती औरंगजेब नी ॥१४॥
लहि अवसर करि कटक रापी टेक राजसिंघ रांणें ।
मालपुरो मारीयौ सारो संहर पड्यो भंगाणें ॥
नांप्यां वाली नाज ट्रंक टोड़ानां सगला ।

दिया । जैसा कि आगेकी टिप्पणियोंसे पता चलेगा कि जयसिंहकी नीति सदैव यही रही कि बादशाहसे कभी संघर्ष मोल न लिया, यदि हो भी जाय तो तत्काल समझौता कर लेना ही श्रेयस्कर है । जसवंतसिंहने खजवामें जो शाही सेनाका सामान लूट लिया था उसे भी औरंगजेबने माफ कर इसे अपने अनुकूल बना लिया । इनकी तलवारका पानी वह उज्जैनमें देख ही चुका था ।

दारा निराश होकर अजमेर चला गया जहाँ दोनों भाइयोंमें संघर्ष हुआ, दारा की हार हुई । यह घटना सं० १७१६ चैत्रकी है ।

४. "वि० सं० १७१५ की भादों वदि ११ (ई० सं० १६५८ की १४ अगस्त) को, आंबेर-नरेश जयसिंहजी द्वारा महाराज जसवंतसिंहजीको समझा-बुझाकर अपने पास बुलवाया । यह भी समयकी गति देख उससे मिलनेको पंजाब पहुँचे । इस अवसर पर औरंगज़ेब ने खासा खिलअत, जरीकी सिली हुई झूल और चाँदीके साजका एक हाथी और एक हथिनी तथा एक बढ़िया जड़ाउ तलवार देकर इनका सत्कार किया ।"

१. समझमें नहीं आया कि कविने इस घटनाका उल्लेख यहाँ कैसे किया ? यह ८ वें पद्यके साथ ही आना चाहिए था, कारण कि मालपुरासे ही तो फतेचंद को टोड़ा पर ३००० सवारोंके साथ लूटनेके लिये भेजा था। वहाँके राजा भी सीसोदिया थे । जहाँगीरके समयमें अमरसिंहहोत भीमसिंहको शौर्य प्रदर्शनके सिलसिलेमें यह जागीर मिली थी । सं० १६८४ फागुन कृष्णा चतुर्दशीको शाहजहांका राज्याभिषेक हुआ उस समय भीमसिंह—पुत्र रायसिंह, जो उन दिनों बालक ही था, को दोहजारी जात और एक हजारका मनसब कर दिया था । कई परगनोंके साथ टोडाकी समृद्धिमें अभिवृद्धि की । सं० १६८८ में रायसिंहकी और पद वृद्धि हुई । शाहजादों के साथ काबुल और कंधहार भी वह हो आया था । तात्पर्य, यह मुगल साम्राज्यका परम शुभचिंतक था । महाराणा राजसिंह रायसिंह पर इसलिये

ख्वाजा पाड़ण रो मतौ कीयौ जैसिंघ कहायौ
तिण वेला पतिसाही में रहणौं माहरैं वुराई वधैं अजमेर मारीयां ।
राणैं उदैपुर आवीयौ सगलां कारिज सारीया ॥१५॥

कुपित था कि सादुल्लाखांकी सेना द्वारा जव चित्तौड़का दुर्ग ढहाया जा रहा था उसमें टोड़ाका राजा रायसिंह भी सम्मिलित था।

कवि जयचंद ने सूचित किया है कि टोड़ामें भी राजसिंहने लूंट मचा कर अनाज जला दिया था, पर वीर विनोद (पृष्ठ ४१५) में उल्लेख है कि रायसिंहकी अनुपस्थितिमें उनकी माताने ६००००) रुपयोंका दंड देकर अपने इलाकेको राजसिंहके क्रोधसे वचा लिया। इसका उल्लेख "राज-प्रशस्ति" में इस प्रकार आया है—

तोडायां प्रेषयित्वा भटपटलभृतौ राजसिंहस्य राज्ञः।
फतेचंदं सहस्त्रत्रयमित सुभट भ्राजमानं प्रधानं॥
षष्ठिस्फूर्जत्सहस्त्रप्रमितरजतसन् मुद्रिका संख्यदंडं।
तन्मात्रा संप्रणीतं प्रहरदशकतस्त्वं गृहीत्वा विभासी॥
सर्ग ७१ श्लोक २९

उपर्युक्त वर्णित दीवान फतेचंद कायस्थ कुलावतंस भागचंदका पुत्र था। इसने एक वापिकाका निर्माण करवाया था जिसके सं० १७२५ के शिलोत्कीर्ण लेखमें टोडावाली घटनाका उल्लेख इस प्रकार किया है—

"राणे श्री राजसिंहजी मालपुरो मारवा पधार्या तदी पंचोली श्री फतेचंदजी हे गढ तोडा (टोडा) ऊपर विदा कीधा आगे विपो हुयो थी तदी तोडा रै वणी मेवाड़ रा लोगाथी वेअदवी कीधी थी तिणी खून रे वास्ते असवार हजार तीन ३००० पंचोली श्री फतेचंदजी री साथे देने विदा कीधा सदी श्री दीवाणजी रा प्रताप थी राजा रायसिंहजी तोडा मांहे थी टालो लीधो रुपीया हजार पेंतीस ऊभे दंड लेने राणांजी श्री राजसिंहजी रे पांवे पाछा दो दिन मांहे मालपुरे आवे पगे ललागा"।

वीर विनोद पृष्ठ ३८२

राज प्रशस्तिमें दंड की संख्या ६००००) हजार वताई है और शिला-लेखमें ३५ हजार। इतने अल्प समयमें रकमका अंतर आश्चर्य उत्पन्न करता है। दूसरी वात यह है कि जिन दिनों राजसिंहने टोडा पर आक्रमण किया था उन दिनों रायसिंह मालवामें था।

पनरोत्तरै दुरभिक्ख पड्यो सोल्यौत्तरै गल्या सगला ।
सतरोत्तरे पाड़ली सोल मेह न वूंठां पाछै पहिला ॥
मालपुरे बहु मंडी रांणें मार्याथी पहिली ।
लगोलग तीन वरस धांन न रह्या दुनीया दुहली ॥
जतियां रै चेला जड्या साहु सुपूतज साहरा ।

१. सं० १७१५ में भयंकर अकाल पड़ा जिसका प्रभाव १८ तक बना रहा । राजप्रशस्तिसे भी इसका समर्थन होता है । महाराणा राजसिंहने राजसमंद सरोवरका प्रथम मुहूर्त्त सं० १७१८ माघ कृष्णा सप्तमी बुधवारको किया । कहा यह जाता है कि कुंवर, रानी, पुरोहित और भाटकी हत्याओंके प्रायश्चित्त स्वरूप इस विशाल सरोवरका निर्माण करवाया गया, परन्तु ऐतिहासिक घटनाक्रमको देखते हुए यह बात सर्वथा तथ्यहीन प्रतीत होती है । जिन घटनाओंके प्रायश्चित्तका संबंध तालावसे जोड़ा जाता है उनका समय तालाव के प्रारंभ करनेके सात आठ वर्ष बाद का है ।

२. आश्चर्य है कविने जहाँ सामान्य राजनीतिक घटनाका सईकीमें उल्लेख किया है, अनाजके किस प्रदेशमें कितने भाव हैं आदि प्रसंग भी यथा स्थान वर्णित हैं वहाँ सं० १७१७ की राजसिंह द्वारा रूपसिंह (किशनगढ़ नरेश) की पुत्री चारुमतीके पाणिग्रहणका सूचन तक नहीं है जिसके कारण औरंगजेब इन पर कुपित हुआ था । राज प्रशस्तिमें इस घटनाको इन शब्दोंमें व्यक्त किया है—

शतेसप्तदशेपूर्णे वर्षे सप्तदशे ततः ।
गत्वा कृष्णगढे दिव्य, महत्यासेनया युतः ॥ २९ ॥
दिल्लीसार्थं रक्षिताया राजसिंह नरेश्वरः ।
राठोड रूपसिंहस्य पुत्र्या पाणिग्रहं व्यधात् ॥ ३० ॥
सर्ग ८

देवारीके भीतरकी त्रिमुखी वापिकाकी प्रशस्तिमें इस घटनाका उल्लेख इस रूपमें मिलता है—

सोयंतद्रूपसिंहस्य दिल्लीसार्थसुरक्षितां ।
पुत्रीपाणिग्रहणोचत सौभाग्यांकितवान्प्रभुः ॥
वीर विनोद, पृष्ठ ३६९

जैचंद जोरो न केहनो सुप सिरज्या हुवै लाहरा ॥१६॥
अठाहरोत्तरै मेह अपार उगणीसैं बाजरी वाहुली ।
बीसै न तूठां मेह निरसी हुई धरती सगली ॥
बीसरै तोलैं मण दोढ नाज भाव एम जणायो ।
अढी सेर वलि घृत मिलै नहीं रोकै रूपीयै मुलायो ॥
गाइ वलद मूआ गया छाछि न मिली ओषधें ।
बीकानेर वड़ देश में ज्यौति आंष्यां री किम वधें ॥१७॥
इकवीसैं घणों अन्न सरस नीपनां सरसे ।
भाद्रवा हुआ दोइ मेह तिहां बहुलां वरसे ॥
सोझितें न हुओ सुभिक्ष तिहां पिण घणां विकाणां ॥
दुषी हुआ बहु मनुष्य पड्या फिर्या घणुं सीदाणां ॥१८॥
बावीसमें बहु मेह तेवीसमें मेह धांन तिम हीज जाणें ।
चोवीसे सुष चैंन पचीसे मेह धणुं वपाणों ॥
छावीसे बहु छत्ति सारौ देसै सुभिक्ष हुऔ ।
भुरटीयो बीकानेर रो राजा कर्ण[1] दक्षिणमें मूऔ ॥

---

१. राजस्थानके नरेशोंमें बीकानेरके कर्णसिंह ही एक ऐसे नरेश थे कि दाराके संकट कालमें भी शाही दरबारमें अनुपस्थित ही रहे। औरंगज़ेबकी बिना आज्ञा लिये ही दक्षिण से वापस लौट आये। वह नहीं चाहते थे कि किसी भी राज्यलिप्सु शाहज़ादे का पक्ष लेकर लड़ा जाय। औरंगज़ेबके शासन-सूत्रों पर पूर्ण आधिपत्य जमाने पर भी इनने शाही दरबारमें कोई सौगात नहीं भेजी, न दरबारमें जाना ही समुचित समझा। ये सब बातें औरंगज़ेब को खला करती थीं, परिणामस्वरूप सं० १७१७ में इन्हें दंड देनेके लिये अमीर खाँ दवाफ़ीको बीकानेर भेजा, तब वह अपने दो पुत्रोंके—पद्मसिंह और अनूपसिंह—साथ शाही दरबार में उपस्थित हुआ, यहीं से इन्हें शाही सेनाके साथ दक्षिण भिजवा दिया। वहाँ भी ये कुछ न कुछ खुराफ़ात करते ही रहे। इधर अनूपसिंह भी बापसे संतुष्ट नहीं था। इसलिये वह बादशाहके प्रकोपका लाभ उठाना चाहता था। कर्णसिंहकी दक्षिणकी उपद्रवमूलक सूचनाओंसे औरंगज़ेब बहुत ही रुष्ट हुआ और उनके स्थान पर अनूपसिंहको बीकानेरका शासक सं० १७२४ में घोषित किया।

अनोपसिंह कुंवरपदे थकें महेसरी मुंहता पासें मैरावीयौ ।
वाघवाल दीयें दुपी हुइ मूओ राजा अनोपसिंह कहावीयौ ॥ १९ ॥

दक्षिणमें औरंगाबादके निकट इनने अपने नामसे 'कर्णपुरा नामक' गाँव बसाया था, वहीं रहता भी था। सं० १७२६ आषाढ़ शुक्ला ४ को कर्णसिंहका देहोत्सर्ग हुआ। पं० उदयचंद रचित "पांडित्य दर्पण" में इनका अवसान सं० १७३१ में होना बताया गया है जो स्पष्टतः संदिग्ध है। टोड़ सा० ने इनकी मृत्यु बीकानेरमें होनेकी सूचना दी है जो सही नहीं है।

कर्णसिंह और औरंगजेबकी अप्रसन्नता और मृत्यु–विषयक मान्यताओंमें अनुसंधायकोंमें मतैक्य नहीं है। यहाँ विशेष ऊहापोह अपेक्षित भी नहीं।

१. यह मुंहता माहेश्वरी दयालदास ही प्रतीत होता है। वही उन दिनों राज कर्मचारियोंमें प्रमुख व्यक्ति था।

२. कवि सामयिक व्यक्ति होते हुए भी मरनेवालेका नामोल्लेख नहीं करता। यह कृपणता क्यों? समझमें नहीं आता। बीकानेरके इतिहासपर दृष्टि केन्द्रित करनेपर विदित होता है कि इस प्रकारके घृणित प्रयासका शिकार महाराजा कर्णसिंहका अनौरस पुत्र वनमालीदास ही हुआ है। औरंगजेबने राज तो अनूपसिंहको ही सुपुर्द किया था, कालान्तरमें या तत्काल वनमालीदासमें भी अनौरस पुत्र होनेके नाते आधे राजकी याचना की थी, कहा यह भी जाता है कि इसके मुसलमान हो जानेसे बादशाहने राजका पट्टा भी दे दिया था, अतः बहुत सम्भव है कि अनूपसिंहने अपने इस प्रतिस्पर्द्धीको षड्यंत्र द्वारा मौतके घाट उतरवा दिया हो। कवि जयचन्दने घटनाका उल्लेख करते हुए भी वह नाम चबा गया है। दयालदासकी ख्यातमें मुंहता दयालदासका नाम आता है जो दिल्ली जाकर अनूपसिंहके मनसबके लिये उद्योग किया करते थे। वनमालीदासकी मृत्यु मुंहताके ही परिणाम स्वरूप हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि कविने समसामयिक प्रभावसम्पन्न व्यक्तिका नामोल्लेख करना उचित न समझा हो, क्योंकि उन्हें बीकानेर भी तो रहना पड़ता रहा होगा।

प्रचलित इतिहासोंमें वनमालीदासको विष देकर मरवानेका उल्लेख आता है पर कवि जयचन्दके उल्लेखसे पता चलता है कि उन्हें विष रूपमें बाघकी मूंछका बाल ही दिया गया था जिसका उपचार भी उन दिनों सीमित था।

छावीसै छत्रधार	राजसिंह सीसोद्रो रांणां ।
देश उदैपुर मांहि	पतिसाह आयां पडै भंगाणों ॥
सिरदारसिंह लालजी	चमरदार हीरो मिलीयौ ।

---

१. सं० १७२६ में उदयपुरमें कोई सैनिक अशान्ति हुई हो ऐसा ऐतिहासिक उल्लेख सईकीके अतिरिक्त कहीं भी देखनेमें नहीं आया, हाँ उनदिनों रघुनाथसिंह सीसोदिया महाराणासे रुष्ट होकर औरंगजेबके पास पहुँच गया था जहाँ उसे एक हजूरी जात और ३०० सवारोंका मनसब मिला। इस वर्ष औरंगजेबने हिन्दू मंदिर उन्मूलनका अभियान चला रखा था। काशी विश्वनाथका मंदिर इसी वर्ष मस्जिदके रूपमें परिणित हुआ। मथुराके गोस्वामियोंको सं० १७२६ आश्विन पूर्णिमाको श्रीनाथजीकी प्रतिमा लेकर विवशतावश निकलना पड़ा। इसे कोई हिन्दू राजा रखनेको तैयार नहीं थे, पर राजसिंहने अपने राज्यमें मूर्तिसह रहनेका आदेश दे दिया और सं० १७२८ फाल्गुन कृष्णा सप्तमीको श्रीनाथजीकी पाटोत्सव विधि सीहाड़के पास सम्पन्न हुई। उन दिनों गोस्वामी जो हस्तलिखित ग्रन्थोंका मूल्यवान भंडार भी लाये थे जिसकी उस समयकी बनी सूची मेरे संग्रहमें सुरक्षित है।

२. यह जैसलमेरकी भटियाणी चन्द्रमतीके द्वितीय पुत्र थे। इन्हें इनकी माता राज्यका उत्तराधिकारी बनाना चाहती थीं जब कि वास्तविक अधिकारी सुल्तानसिंह था। राजसिंहको उकसाकर रानीने सुल्तानसिंहका, राणाके हाथों, वध करवा दिया। और पुरोहितसे मिलकर अब यह षड़यंत्र रचा जाने लगा कि राजसिंहको भी समाप्त करवाकर अपने पुत्र सरदारसिंहको एक मात्र राज्यका अधिपति बना दिया जाय। पर दैववशात् उपयुक्त समयसे पूर्व ही सारा भेद खुल गया, जैसा कि आगामी पद्यके टिप्पणसे ज्ञात होगा। सरदारसिंह इस प्रपंचसे अनभिज्ञ था, पर जब उसे पता चला तो वह आत्म ग्लानिसे इतना अभिभूत हो गया कि विषपान कर आत्महत्या कर ली। उसके सिरहाने यह दोहा लिखा पाया गया—

पाणी पिंड तणाह	पिंड जातां पाणी रहै।
चींतारसी वणाहं	सुपना ज्युं सर्दारसी ॥

आज भी उदयपुरके शंभूनिवासके निकट इनकी छतरी विद्यमान है, जहाँ नित्य पूजा होती है। एक किंवदंती है कि इनका शव जब ले जाया जा रहा था तब एक जैन यति, जो इनका मित्र था, का स्थान मार्गमें पड़ा

सईकी

'कचरो कमलसी कलीयो ॥
प्रतापसिंह रजपूत राउत राणी राजीयो ।
ऊँदा देदो दूदो इता कागलमें लिखी नांम रापीयो ॥२०॥
राणां सूं चूक रापीयो दयालनें कटारी दीधी ।
'हीरे हरपित होइ

जिसने इन्हें जीवित कर चौपड़ खेली और कहा कि वापस जाओ, पर सरदार-सिंहने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि जब रानी सती हो ही रही है और महलोंसे बाहर निकल चुकी है तो अब वापस जाना अनुचित है। इस कहानीमें कितना तथ्य है? कहना कठिन है। इनकी रानी रतलामके राठौड़ रामसिंहकी पुत्री अमरकुंवर थी जो इनके मरते समय अपने पिताके पास थी, उस समय वह मुश्किलसे १२ वर्षकी रही होगी। वह सं० १७२७ में सती हुई जिसका चौतरा सं० १९३२ तक रतलामके कालका माताके पृष्ठ भागमें विद्यमान था।

१-२ चंवरदार हीरा, प्रतापसिंह राजपूत, कमलसी और कचरा आदिका वृत्त ज्ञात नहीं हो सका।

३-४-५ ये तीनों मंत्रीश्वर दयालदासके भाई थे जैसा कि सं० १७३२ के राज-समंद विशाल सरोवरके निकट ही पहाड़ीपर बने ऋषभदेव मंदिरके शिलोत्-कीर्ण लेखसे ज्ञात होता है। इसी वर्ष राजसमंद जलाशयकी भी प्रतिष्ठा हुई थीं, पर वहाँकी राजप्रशस्तिमें इसका उल्लेख तक नहीं है। सांप्रदायिक भावनाके प्राबल्यके कारण ऐसा हुआ जान पड़ता है।

६. हीरा चंवरदार कौन था? पता नहीं। पर होना चाहिये कोई जिम्मेदार व्यक्ति। इसने ही प्रसन्न होकर असावधानीसे दयालदासको वह कटार दी जिसमें गुप्त पत्र रखा हुआ था। दयालदास बनिया था, उसने पत्र पढ़ते ही सारा भेद राजसिंहके समक्ष खोल दिया। राणाको प्रचंड क्रोध आ गया, स्वाभाविक भी था, वैसे ही राजसिंह अत्यन्त उग्र प्रकृतिके राजा थे। राणीसे तत्काल अप्रसन्न हो गये और तलवारसे कुंवरको समाप्त किया, यह कुंवर जयचंदके कथनानुसार तो सरदारसिंह ही प्रतीत होता है, जब कि आधुनिक इतिहासोंमें तो यह पाया जाता है कि गुर्जसे सुल्तानसिंहको मारा और सरदारसिंह स्वतः विषपान कर परलोक गये। इस दुःखद घटनाका विस्तार वीर विनोद पृष्ट ४४७ में इस प्रकार उल्लिखित है—

"इन्हीं महाराणाकी रानीने अपने बेटे सर्दारसिंहको युवराज बनानेके लिये बड़े कुंवर सुल्तानसिंह की तरफसे महाराणाको शक दिला कर उनका

दयालें कटारी देपी कहावत राणें सूं कीधी ॥
राजसिंह रापी रीस भरी वाटको असल रो पायौ ।

चित्त कुंवर की तरफ़से हटाया, और महाराणाने नाराज़ होकर उसी गुर्जसे कुंवर सुल्तानसिंहका काम तमाम किया। थोड़े दिन पीछे अपने पुरोहितको उसी रांणीने एक पत्र लिखा कि मैंने सुल्तानसिंहको तो इस फ़रेबसे मरवा डाला, अब दर्बारको भी ज़हर दे देना चाहिए, जिससे मेरा बेटा राज्यका मालिक बनें, पुरोहितने उसी कागज़को अपनी कटारीके खीसेमें रख दिया, पुरोहित पास एक महाजन दयाल नामी नौकरी करता था, उसकी शादी किसी महाजनके यहाँ ग्राम दिवालीमें हुई थी, जो कि उदयपुरसे दो मीलके फ़ासले पर है, एक दिन त्यौहार पर पहर रात गये दयालने अपने मालिक पुरोहितसे एक शस्त्र माँगा, पुरोहितने अपनी कटारी दे दी। वह रातको अपनी ससुराल गया और वहाँ एक घरमें ठहरा, वह कटारीका खीसा (जेब) खोलकर कागज़को वांचने लगा, वांचते ही वह वहाँसे दौड़ा और उदयपुर आया, आधी रातके समय महाराणाको जरूरी कामकी अर्ज़के बहानेसे बाहर बुलवाया और कागज़ नज्र किया, महाराणाने भीतर जाकर गुर्जसे उस राणीका भी काम तमाम किया और पुरोहितको बुलाकर उसी गुर्जसे मार डाला, कुंवर सरदारसिंह, जो इन बातोंसे बिल्कुल बेखबर थे, कुंवर पदके महलोंमें जहर खाकर मर गये।

उपर्युक्त उद्धरण और कवि जयचन्दके कथनमें स्वल्प अंतर है। मूल बातमें साम्य है। वीर विनोदका कथन अधिक विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता, कवि समकालिक है, अतः इनकी बात ही मानी जानी चाहिए। उद्धरणमें पुरोहितको मारनेका सूचन है, पर यह पुरोहित कौन था? इसका स्पष्टीकरण अपेक्षित है। उन दिनों राजकीय पुरोहित पद पर गरीबदास नामक व्यक्ति था, परन्तु इनकी हत्या तो नहीं की गई थी, कारण कि सं० १७३२ माघी पूर्णिमाकी राजसमंदकी प्रतिष्ठामें गरीबदास पुरोहित सम्मिलित था।

७. दयालदास उदयपुर निवासी सरुपरिया गोत्रीय ओसवाल था। कटारीने इनके भाग्य द्वार सदाके लिये खोल दिये। राज्यमें इनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और राजसिंह भी इनकी सम्मतिको महत्त्व देता था। जैन धर्मके प्रति इनकी पूर्ण आस्था थी। राजनगर स्थित "दयालशाहका किला" इसका प्रतीक है।

८. यह अमलका कटोरा भर किसे पिलाया? पता नहीं। सरदारसिंह तो स्वतः ही विषपान कर चुके थे। रानी और सुल्तानसिंह तो गुर्जसे मारे गये थे।

रांणी ने अयोली रापी	तरवारि सूं कुंमर तोड़ायौ ॥
सरदारसिंह मूआ सेती	कर्ण राजानी वेटी कही ।
लाज न रापी लालजीकुंवर नी	राजा मित्र केहनां नहीं ॥२१॥
छावीसे सारी छत्ति	चमरदार करी नें छाती ।
हीरौ सिरदारसिंह रांणी	राणां सुभ नहीं राती ॥
प्रतापसिंह कचरो कमलसी	वली सिंहजी रा वेटा ।
रीस घणी रांणे राजसिंह	घांणें घाली मारोया ॥
सींधरां सूं पग बांधी नें	आकासें ऊड़ाड़िया ॥२२॥
सतावीसें आसाढ सावण	दोय महिना मेह न तूठो ।
घणां गया बाहर वेची	पछें जगदीशज तूठो ॥
अठावीसै फली आस	तिण वरसै आसाढ दोई ।
कुंवर मूओ पृथ्वीसिंह	हूऔ बुरो कहै सहु कोई ॥

---

२१ वें पद्यकी घटनाके साथ एक और दंत कथा भी पाई जाती है कि किसीने राजसिंहके मनमें जंचा दिया था कि उनकी रानीका सम्बन्ध कुंवरसे संदेहात्मक है। राजघरानोंमें इस प्रकारके प्रपंच तो चलते रहते थे।

१. सरदारसिंहका पुनः पुनः उल्लेख कवि करता है। इससे कल्पना होती है कि सरदारसिंह क्या सचमुच इस प्रपंचसे अपरिचित थे? उन पर भी राणाका प्रकोप तो सईकीसे परिलक्षित होता है।

२. प्रतापसिंह, कचरा, हीरा और कमलसी अनिष्टमें सम्मिलित थे, इनको रस्सीसे *बांधकर, इधर-उधर उछाल घाणीमें डाल कर पिलवा दिये। आज भी* "घाण्या मगरा" उदयपुरमें प्रसिद्ध है।

३. पृथ्वीसिंह महाराजा जसवंतसिंहका बेटा था। इनका जन्म सं० १७०९ में हुआ था। विवाहके दो वर्ष बाद ही वह सं० १७२४ ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशीको शीतलाके प्रकोपसे दिल्लीमें चल बसा। सईकीकारने इनका मृत्युकाल सं० १७२८ बताया है वह गलत है। टोड राजस्थान (क्रुक संस्करण भाग २, पृष्ठ ९८४-८६) में इनका अवसान समय सं० १७२६ बताते हुए इसका कारण औरंगजेब द्वारा प्रदत्त विषैली खिलअत सूचित किया है।

सिवो पातसाह नें मिली करी निज देशें गयौ सावतौ ।
राजा जैसिंह री वाहैं मिल्यौ पछै कियौ आप जावतो ॥२३॥
ऊधौ गुणतीसै ऊठीया निरवांण रजपूत कहाणां ।
जोगीदास वीरभांण थरक्या तिण देपि राउ रांणां ॥
फतेपुर मारि वछै नारनौलि जाई ।
दिल्ली लेवा मन कीयौ लै वैसां छत्र धराई ॥
पातिसाही औरंग इम जांणीयौ, सारी धरती दावी नें ।
पतिसाही लेस्यै परी गेवी ऊधा आवी नें ॥२४॥
मक्के जावण मन कीयौ मिल्यौ चिमनों पतिसाह नें आई।
दिलगिर हजूरत देपि मिल्यौ ऊधां सुं जाई ॥
सतगुरु दुहाई फेरि मरावीयौ वांसे जाई ।
अढाई महिनां सुधी सतगुरु की फिरि दुहाई ॥
वीकानेर जोधपुर धरतीयै आठ मास तांई डर रह्यौ ।
सीरवी राजसीये वीलोडे मारीया, राजा जसवंत रो सिरपाव लह्यौ ॥२५॥
गुणतीसौ समौ करवरौ तीसे दोई भाद्रवा हुआ ।
पहिले भाद्रवै मेह न हूआ तिहां सींचाया कूआ ॥
वस्तु वानां राली वेची निकली गया केई परदेशी ।

---

१. सईकीके सं० १७२८ के विवरणमें छत्रपति शिवाजीका वादशाहसे मिलना बताया है वह अन्यान्य ऐतिहासिक सावनोंके प्रकाशमें सही नहीं ठहरता । वह जयसिह कछवाहाके प्रयत्नसे सं० १७२३ में शाही दरवारमें गया था । सं० १७२४ में तो आंवेरके मिर्जा राजा जयसिहका वुरहानपुर में स्वर्गवास हो चुका था । वादशाहका व्यवहार शिवाजीके प्रतिकूल था, अतः वह कैदसे भाग निकला, जिसके परिणाम स्वरूप जयसिहपर औरंगजेव कुपित हुआ और इसी चितामें जयसिह परलोकवासी हो गया ।

२. इसका संकेत सतनामी विद्रोहसे प्रतीत होता है । क्योंकि उनका उपद्रव असीम हो चला था कि जिसके दमनके लिये तोपोंका प्रयोग अनिवार्य हो गया था ।

बीजें भाद्रवे हूओ मेह सुणी लोक आवी घरमें पैसे ॥
पाछलि धांन हूओ घणों धींणां धांन सुं धापीया ।
व्याज उधारा जे दीया हुता तें रूपीआ पाछा आवीया॥२६॥
इकतीसे हुआ ऊंदरा वूठा वलि मेह घणाई ।
उन्हाली गोहूं वावीया तिहां ऊंदरा गया पाई ॥
सुगाल सारी धरतीयें कोठीयें धांन थां मुगतां ।
न जाण्यौ लोकें दुरभिक्ख अन्न भाव हुआ सुसता ॥
बत्तीसे मेह बहुत हुआ धानं हुऔ पाधो तीड़ीये ।
जोधपुर कांठे दुरभिक्ख जाणीयो, काढ्यौ वरस लोके मीडीये॥२७॥
तेंतीसे जिहां तिहां नाज सुभिक्ष हुऔ धरती सगले ।
राजा जसवंत रौ कुंवर जगतसिंह रै पथरी न गलै ॥
सन्यासी घणां सेवीया लाप तांई रूपीया पवाया ।
इम गुण करां तुरत्त इम भगत जोगीये भरमाया ॥
भाठौ देव करि पूजीयौ नवरते जोगी सन्यासी तेड्या ।
बहुत ही भंडारा दीया पिण समरथ न हूआ रोग फोड़वा॥२८॥
सूअर री कीधी सिकार[1] मांस पायें अवगुण हूऔ ।
जोधपुरें जगतसिंह कुंवर ते रोग सूं मूऔ ॥
ते सुणी जसवंतसिंह वात धरती कुंवर नें पाणी दीयौ ।
कटक रे थांणे आप रह्या दुक्ख घणो ही कीधौ ॥
धरती में रपवालो को नहीं जोधपुर में लोके जांणीयो ।

---

१. इनका स्वर्गवास सं० १७३३ चैत्र कृष्णा ३ को होनेका उल्लेख तो अन्य ऐतिहासिक रचनाओंमें मिलता हो, पर कारण अज्ञात था। सईकीकारने इसका कारण पथरी बताया है जो सूअरके मांस खानेसे हुई थी। रोग निवारणार्थ प्रचुर अर्थ-व्यय किया गया, साधु-सन्यासियोंकी सेवा की गई, पर किसीकी औषधि फलप्रद नहीं हुई। इनके मरनेसे जसवंतसिंहको बहुत दुःख हुआ, कारण कि राज्यका रक्षक और कोई पुत्र था ही नही। अजितसिंह इनकी मृत्युके बाद उत्पन्न हुए थे।

चौंतीसैं सुभिक्ष सुप चैंन हूऔ　　पैंतीसो पतवाणीयौ ॥ २९ ॥
पैंतीसे री पड़ी पुकार　　पहिलो दुभिंप हूऔ चौ पैंतीसौ।
ते जांणी संच्यौ धांन　　आसाढे आधमण दीसै ॥
पछै मेह हुऔ इक कारौ　　सावण आपै काढ्यौ।
भाद्रवो पिण आपो मास　　काढ्यौ जांणी धानं छिपाड्यौ।
भाद्रवा सुदि तेरस दिनैं　　मेह हूआ सारी धरतीयें।
कोठी पोडां सुं धांन काढीनें रूपीये मण नाज वेचीयो कीए॥३०॥
दुनीयां जाण्यौ दुकाल　　पडिस्यै पैंतीसो पापी।
तिहां विन्हें हुंद दुकाल　　लोकनें लीधा संतापी ॥
पोह वदि दशमी राजा जेसवंत[1] मूऔ, फलवधि[2] मेले में सुण्यौ।

---

१. सं० १७२५ पौष कृष्णा १० को जोधपराधीश जसवंतसिंह, ५२ वर्षकी अवस्थामें जम्रोद मुकाम पर काल कवलित हुए। औरंगज़ेवने अनुभव किया कि इस्लामका अवरोधक द्वार खुल गया। वेगमोंने यह कह कर शोक मनाया कि आज मुग़ल साम्राज्यका एक सुदृढ़ स्तंभ ढह गया। मारवाड़की जनताने अपने आपको नाथ विहीन अनुभव किया। क्योंकि मरते समय इन्हें कोई पुत्र नहीं था जो वंशका गौरव वनाये रखता। इनकी मृत्युके वाद चैत्र कृष्णमें अजितसिंह और दलथंभन अवतीर्ण हुए। फलोधीके मेलेमें जयचंदको जसवंतसिंहके देहोत्सर्गका संवाद मिला, सारा हर्ष विषादके रूपमें परिणित हो गया। विक्रयार्थ जितना भी सामान आया था, सवका सव वापस लौटा लिया गया। एक वातका आश्चर्य है कि जम्रोदमें जिस दिन इनने परलोक यात्राकी उसी दिन यह संवाद भारतमें कैसे प्रसरित हो गया ?

२. फलवर्द्धिका—फलोधी राजस्थानके प्राचीन नगरियोंमें एक है। इसका ऐतिहासिक महत्त्व है। चौदहवीं शताब्दीके सुप्रसिद्ध आचार्य और राजस्थानके मूर्द्धन्य विद्वान् श्रीजिनप्रभसूरिजीने अपने मूल्यवान् ग्रंथ "विविध तीर्थकल्प" में इस स्थानका परिचय दिया है। यहाँ फलवर्द्धिका देवीका सुंदर शिखरवद्ध मंदिर था। इसीसे इसका नामकरण हुआ। यहाँ पार्श्वनाथ भगवानकी अतिशययुक्त प्रतिमा भूमिसे निकली थी जिसकी प्रतिष्ठा सं० ११८१ में धर्मघोष नामक आचार्यने की थी। सुलतान शहावुद्दीनने आज्ञा निकाली थी कि कोई भी व्यक्ति इस पावन तीर्थ स्थानकी आशातना-अवगणना न करे। वहुत प्राचीन कालसे यहाँ उपासक वर्ग एकत्र होकर विशिष्ट प्रसंगों पर

गाडां भन्या गयां थां जेंम, भन्या पाछा लोके आण्यो भरीयौ ॥
अठारै पोत्रां वली एकठी   एकै राणी सत कीयो ।
जोधपुरमें लोके जांणीयौ धरती मारवाडि नें पाणी दियो ॥३१॥
पेंतीसे लागते प्रथम   मनोहरी फिरि लोकां री ।
आध मण अन्न असाढ़   मेह न हूओ तिण वारी ॥
चंद्रमा ग्रहण सबल प्रहर   तांई रह्यौ अंधारौ ।
ते देपी रह्या थरकि   फलवधि मेले पड्यो पुकारौ ॥
पौह वदि दसमी दिने भंगांण पड्यौ, राजा जसवंत मूओ सुणी ।
पृथ्वीसिंह होत जो पापती तो थापत जोधपुरा नो धणी ॥३२॥
रघुनाथै भाटी रजपूत   केशरीसिंह पंचोली कहीयै ।

गीत-नृत्य द्वारा अपनी भक्ति व्यक्त करते रहते हैं। यही मेलेका पूर्व रूप था। जयचंदके उल्लेखसे ज्ञात होता है कि उन दिनों भी जन भावना इस स्थानसे संश्लिष्ट थीं और आज भी हैं। किसी समय सपादलक्ष देशांतर्गत यह भू-भाग गिना जाता था। जैन साहित्य और इतिहासमें इसके प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। पोष कृष्णा १० पार्श्वनाथका जन्म दिन है, उसीकी स्मृतिमें मेला लगता है।

१. कविने सूचित किया है कि जसवंतसिंहके पीछे १८ पात्र-रखैलियां और एक रानी सती हुई। वीर विनोदमें एक रानी, जो रामपुरेके सरदार राव अमरसिंहकी पुत्री थी, और ८ खवास पड़देवाली सती हुई। सर यदुनाथ सरकारने "हिस्ट्री ओफ औरंगजेब" भाग ३, पृष्ठ ३७३ पर सूचित किया है कि इनके पीछे ५ रानियां और ७ अन्य पड़दायतें सती हुई। ख्यातोंमें इनकी संख्या १५ लिखी है।

२. यह रघुनाथ भाटी जोगीदासका पुत्र और लवेरेका ठाकर था। जसवंतसिंह का परम विश्वस्त और राज्य हितैषी था। जसवंतके मरणोपरान्त उत्पन्न विषम स्थितिको इनने धैर्य और कुशलताके साथ संभाला। खांजहां और चांपावत सरदार विट्ठलका पुत्र सोनंगके साथ भावी युद्धको बड़ी ही गंभीरताके साथ स्थगित करवाया। सं० १७३६ द्वितीय ज्येष्ठ कृष्णा ११ को जब खंडित प्रतिमाएं लेकर खांजहाँ औरंगजेबके पास दिल्ली नजर करने गया था तब उसके साथ रघुनाथ भी कुछ आत्म निवेदन करने गया था।

सोनिग चांपावत सरस	इसे अवसाणे लहीयै ।
माथे बांधी मोड़	उमेद धरि जोधपुर आयौ ।
करुंथी केशरीसिंह	भाटी रामसिंह बुलायौ ।।
थाणें इयांनें थापीनें	केशरीसिंह रघुनाथ मिली ।
कटक करि दोइ हजार सुं	दिल्ली पतिसाह . . . . ।।

महाराजा अजितसिंहकी सुरक्षाका दायित्व इनके कंधों पर भी था। युद्ध क्षेत्रका इन्हें प्रचुर अनुभव था। सं० १७१५ में वरमतमें लड़े गये युद्धमें यह घायल हुआ था।
महाराज कुमार डा० रघुवीरसिंह—"रतलामका प्रथम राज्य" पृष्ठ ३१

३. औरंगज़ेवने जोधपुर खालसा करनेके वाद वहांके विश्वस्त और राज्यभक्त कर्मचारियोंको तंग करना प्रारंभ किया जिसका प्रथम शिकार केशरीचंद पंचोली हुआ। राज्यका हिसाव देनेका दायित्व इनने अपने पर ले लिया, पर हिसाव न वतानेसे इन्हें क़ैदमें डाल दिया और विना अन्न जलके संसारसे विदा हो गया। कवि जयचंदने सूचित किया है इन्हें विषपान कराया गया था जिसके कारण इहलोकलीला संवरित की। देखें पद्य ३५।

१. यह चांपावत सरदार मारवाड़—वीरोंमें सर्वाग्रणी थे। जसवंतसिंहकी रानियोंको लाहौरसे दिल्ली ले आनेवालोंमें यह भी प्रमुख थे। स्वामी भक्त ऐसे थे कि जव औरंगज़ेवने राव अमरसिंहके पौत्र इंद्रसिंहको मारवाड़का राज सौंपा तव इन्हें प्रलोभनों द्वारा अपनी ओर करनेके शताधिक प्रयत्न किये, यद्यपि वीचमें थोड़ेसे फिसले भी थे, पर दुर्गादासके पत्रने इन्हें मार्ग पर ला दिया। एक कारण यह भी था कि इंद्रसिंहने जो वादे किये थे, वे अपूर्ण रहे। अतः वे पुनः दुर्गादासकी सेनामें सम्मिलित हो गये। दुर्गादासके साथ शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर मुगल शासित प्रदेशोंमें उपद्रव करने लगे। उस समय इन्हें अजितसिंहको सुरक्षाकी दृष्टिसे राजसिंहके निकट पहुँचाना युक्तिसंगत जान पड़ा। महाराणाने अजितको ससम्मान अपने राज्यमें स्थान देकर केलवाकी जागीर अर्पित की। वादमें सोनगने गुजरात तक उपद्रवका क्षेत्र विस्तृत कर दिया जिसके दमनार्थ शहावुद्दीनको भेजना पड़ा। फुंदलौताके समीप सं० १७३८ में आकस्मिक रूपसे यह मारे गये। राज रूपकमें यह दोहा इनकी स्मृतिको संजोये हुए है—

अठत्रीसे आसोजमें	सित सातम सनवार।
गौ सोनासिर धांम हरि,	नाम करे संसार ।।

अटक सेती आवीयो दुरंगदास आस कर रोडि । ...
कवांण गोसे थी पकडण रो, औरंग औ चोलौ चितान्यो ॥
जसवंतसिंह रौ ज़ोधपुर करुं हिव पालसै, अमरस मन मैं आणीयौ ।
विजैरगढ़ चाढ़ो कटक पतिसाहै रजपूत बल पतवाणीयौ ॥ ३४ ॥
क़ामेति केशरीसिंघ भरी विप वाटको पायौ ।
पंचौली मूऔ जांण दिल्लीपति इसो आदेस दीधौ ॥
दारु सुं भरी नालि सहुनें मारौ साथे ।
दुरंगदास तिण वार हथीयार लीधा हाथे ॥
संवाही तेग तुरक फौजसुं रघुनाथ भाटी रिण में रह्यौ ।
तीन फौज करि नींकल्या पतसाहें रजपूतां रौ वल लह्यौ ॥३५॥
जोधपुरें सोनंग दुरंग वरस लगि रह्या वड़ दावै ।
ढाह्या नदी देहरा वकरो सांड़ मारण न पावै ॥
इम जांणी औरंग अकल करि इंद्रसिंह नें आंण्यौ।
महाराजा पदवी देई एको हिन्दू रो ... तोडयौ ॥
आठ मास रह्यौ आइनें गाइ मारी देवल ढाहीया ।

१ यह नागोरके राव अमरसिंहका पौत्र और रायसिंहका पुत्र था । औरंगजेबने राठौड़ोंका विघटन करनेके लिये इन्हें ख़िलअत देकर जोधपुरका शासक बना दिया । पर राठोड़ अपना हिताहित भलीभांति समझते थे, अतः आपसीमें लड़कर अपना दल-बल नष्ट करना नहीं चाहते थे । इंद्रसिंहने वहुत चेष्टा की कि राठौड़ मेरी ओर मिल जांय, पर उन्हें इस कार्यमें विफल ही रहना पड़ा । औरंगजेबकी आंतरिक अभिलाषा थी कि किसी भी प्रकार राठोड़ सेना छिन्न भिन्न हो जाय ताकि जोधपुर पर मुगल साम्राज्य यथावत् सदा काल बना रहे ।

२. जोधपुर मुगल राज्यकी छायामें आ जानेसे वहां गोवध ही नहीं किया जाने लगा, अपितु, मंदिरोंका स्थान मस्जिदें लेने लगीं । बादशाहको खुलकर खेलनेका अवसर हाथ लगा था । खांजहांने मंदिर और मूर्त्ति विनाश कार्यमें अद्भुत सफलता प्राप्त की थी । ये खंडितावशेष लेकर वह स्वयं सं० १७३५ द्वितीय ज्येठ में दिल्ली पहुँचा था ।

... ... तां तरिनैं तुरकांरा थांणा थापीया ॥३६॥
[1]समीयांणे............ ....ज राति तांई ।
कोटड़ा वटी जालौर राड़द्रह गुढा रहाई ॥
फलोधि पुह[2]करण कोट मेड़ते जोधपुर मांहि ।
आवी रह्या अजमेर आटा वांधी राठौड़ जुगति तुं ॥
ठकुराई एती थांन में जसवंतसिंह जारै जकै ।
....दुहाई दुनीयां नमें ॥३७॥
अव[3]नीपति औरंग फिरै ज्युं पाधरो पाजी ।
दिल्ली छांडी डील करवा मते हिन्दू नें काज़ी ॥
देवल ढाही मसीत की रही आंण इक रां[4]र्ण की ।
जसवंतसिंह गजसाह सुत दुतीय[5] ढाल हीन्दुआणकी ॥ ३८ ॥

१. प्राचीन जैन साहित्यमें इसका पुरातन नाम "शम्यानयन" मिलता है।
२. इसका प्राचीन नाम पूर्वकरणपद्र प्रतिमालेखोंमें प्राप्त होता है,
३. जसवंतसिंहके अवसानोपरान्त औरंगज़ेवके मनमें इस्लाम प्रसारकी भावनामें वेग आया। सर्वप्रथम वह मारवाड़ पर मुग़ल शासन दृढ़ करनेकी चिन्तामें था। तदर्थ खि़दमत्गुज़ारखां (जोधपुरका दुर्गपाल) ताहिरखां (फ़ौजदार) शेख़ अनवर (तहसीलदार) और अब्दुल रहीम (कोतवाल) जैसे व्यक्तियोंको नियुक्त कर चुका था। असदखां और शाहज़ादा अकवरको भी उसने इस ओर आनेका शासकीय आदेश दे दिया था। इतनेसे ही उसे संतोष नहीं हुआ तो वह स्वयं सं० १७३५ चैत्र कृष्णा ४ को अजमेर आ पहुंचा ताकि राठौड़ विरोधी समस्त कार्यवाहीको अपनी आंखों देख सके। यद्यपि खांजहां और हुसैनकुलीखां जैसे परम विश्वस्त सरदार विद्यमान थे, अजमेरमें शाहको संवाद मिला कि जसवंतसिंहकी रानियोंने पुत्र प्रसव किया है, तत्काल वह दिल्ली विदा हो गया, क्योंकि वह इन पुत्रोंको भी सदाके लिये समाप्त कर अपना भावी शासन निष्कंटक वनाना चाहता था।
४. कविने यह गौरव मेवाड़को प्रदान किया है कि इसने विपत्तिके समयमें भी महाराणाने अपने हिन्दुत्वकी पूर्णतया रक्षा की। पर सं० १७३७ में उदयपुर भी मूर्त्ति-मंदिर-ध्वंस लीलासे वच नहीं सका था।
५—इसका सीधा अर्थ है प्रथम ढाल शिवाजी थे और दूसरी जसवंतसिंह।

लागी लूंटा-लूंटी	भये करि मारग भागा ।
लै धन मुहकम कूटि लोके	घणां रड़वड़्या लागा ॥
जाइ सकै नहीं कोइ	निवला नींकलो नरनारी ।
जोधं साथ जिहांन	भला नर यथा भिपारी ॥
मूलगो गांव सगले छोडीया	जाई पेठा पूर्ण-पाचरे ।
गुढी मांडि रह्या भापर कन्हैं	वसही टावर राष्या इण परें ॥
अनोपेसिंह इसरात	मेड़ते आई पोड़ा लूट्या ।
पछै आया तुरक्क	.... लोकनें कूटया ॥
घोड़ां री सोवत मारि	सौदागर लीधा.......... ।
ले तुरकां नें मारि	माल लीधो लूसी ॥
छ हजार रजपूत साथि ले	राजसिंघ[२] मेड़तीयो ।

१. सं० १७४१ में वीकानेरके अनूपसिहने कूंपावत और करमसोतोंको साथ लेकर लूंनी और तत्सन्निकटवर्त्ती प्रदेशमें मारकाट मचाई थी जिसका उल्लेख "मारवाड़के इतिहास"में है पर मेड़तेके खोडे लूंटनेकी सूचना तो जयचंदने ही अपनी प्रस्तुत सईकीमें दी है ।

२. यह स्वाभाविक है कि शासक शासितों पर अधिकार प्रदर्शनार्थ अत्याचार करता है । मेड़तामें सादुल्लाखांने ठीक वैसा ही किया । विवशतावश राठौड़ सहते भी गये । यह कहनेकी शायद ही आवश्यकता रहती है कि प्रत्येक कार्यको एक निश्चित सीमा होती है । अतिकी गति नहो होती । अपनी प्रजा पर होनेवाले नित नयें उत्पीड़नोंसे राजसिंह मेड़तियाका दिल दहल उठा और उसने राठौड़ वीरोंके साथ मेड़ता पर आक्रमण कर दिया । विजयश्री राठौड़ोंको रही । सादुल्लाखां पकड़ा गया । जब यह संवाद इनायतखांके जामाता और अजमेरके तात्कालिक फ़ौजदार तहव्वरखांको मिला तो वह पुनः मेड़ता पर आधिपत्य कायम करनेके लिये विशाल कटक लेकर चल पड़ा । पुष्कर क्षेत्रके पास राठौड़ सेनाके साथ राजसिंह तहव्वरखांसे भिड़ गया और तीन दिन तक भयंकर युद्धके बाद सफलता प्राप्त की । कहीं-कहीं यह देखनेमें आता है कि इसमें विजय तहव्वरखांकी हुई, पर यह यदि सच है तो विचारणीय प्रश्न यह उपस्थित होगा कि ऐसी स्थितिमें औरंगजेबके पास शिकायत भेजनेकी क्या आवश्यकता थी ? इस

आईनें मास अठी रह्यौ मेड़ते जगमें तेग गजाइनें ॥ ४० ॥
मेड़तिया चंदावत जैमलोत कुंदावत जांणें ।
चांपा कूंपा जैतावत तेरे साप राठौड़ वपांणौ ॥
सगालां लेई साथ रेयां आलणियां वस आगें ।
आयौ इनायतपांन बेटा पोता जमांई सु भागे ॥

संघर्षमें मेड़तिया सरदार राजसिंह अठारह योद्धाओंके साथ काम आया, पर मुग़लोंकी भी कम क्षति नहीं हुई। यह घटना सं० १७३६ की है। सईकीकार जयचंदने तथ्य तो सही दिया है, पर संवत् विचारणीय है। एक और सूचना सईकीमें संकलित है, वह यह कि इस युद्धमें इनायतखां भी सम्मिलित था। तहव्वरखांका प्रधान रूपसे उल्लेख न करते हुए "जंमाई" शब्दसे अभिहित किया है। प्रचलित इतिहासोंमें इनायतखांका उल्लेख नहीं मिलता।

१. इनायतखांनका वंश और जन्म स्थान अज्ञात है। "मआसिरुल उमरा"में इतना ही उल्लेख है कि वह औरंगज़ेबके शासनकालमें दसवें वर्ष खालसाका दीवान नियत हुआ। चौदहवें वर्ष बरेलीके चकलेका फ़ौज़दार, अठारहवें वर्ष खैराबादका फ़ौज़दार और बीसवें वर्ष पुनः खालसेका प्रबंधक पुनः नियुक्त हुआ। बादमें इनका स्थानान्तरण कामदारखांके स्थान पर सरकारी क्युनाती पर हो गया। यह मांड़लमें भी दीनदारखांके साथ फ़ौज़दार था।

औरंगज़ेबने इनायतखांको सं० १७३८ चैत्र शुक्ला ११ को अजमेरका फ़ौज़दार बनाया। उस समय मुग़ल शासनका पूर्णाधिपत्य होनेके बावजूद भी राठौड़ोंके स्फुट हमलोंसे शासकीय स्थिति संतोषप्रद नहीं थी। इन्हीं दिनों दुर्गादासकी बिना सम्मति लिये ही अजितसिंहने अपने आपको वास्तविक रूपमें प्रकट किया और औरंगज़ेबकी चिंतामें अभिवृद्धि की। शाहने अजमेरके फ़ौज़दार इनायतखांको आदेश दिया कि अजितसिंहको तत्काल पकड़ लिया जाय, पर आदेश देनेमें और उसे क्रियान्वित करनेमें बड़ा अंतर होता है। कार्य सरल नहीं था और अजितके रक्षक भी इतने भोले नहीं थे, अजितोदय काव्य और राज रूपकमें जहां इस घटनाका उल्लेख किया गया है वहां अजमेरके हाकिमके रूपमें इनायतखांका नाम नहीं है। सईकीसे भी तथ्यात्मक संपुष्टि होती है, पर व्यहृत संवत नहीं हैं। कविने इनायतखांका उल्लेख सं० १७३५ के सिलसिलेमें किया है, यह ठीक नहीं है। यह घटना सं० १७३८ के बाद की है।

काम आयौ राजसिंघ राजवी अढार जणां सुं एकलौ ।
उदावते आपौ सवाहीयौ विचार कीयौ आपें नींकलौ ॥ ४१ ॥
छत्रीसे छत्रीसा जागीया छठा छिपाया था सारा ।
फलवधी पुहकर पाडीया पडया कापरड़ेह वगारा ॥
तुरक ताता हुई तैयार जोधपुरें तेग जगाई ।
मुंहकम मारै गांव ल्यावै वंदि लोग लुगाई ॥
कोई रजपूत मारै गांम नें लूटे पोसे लोभीया ।
तुरक फिरै पूठे लगा तौ हार सहै थिर थोभीया ॥ ४२ ॥
धरती थल-थले हुई देपि दिल्लीपति साह चढ़ीयौ ।
आयौ वेग अजमेरें आइ ख्वाजे सुं अ···ड्यौ ॥

इनायतखांकी मृत्यु पीठके फोड़ेसे हुई जिसकी सूचना औरंगजेवको सं० १७३९ में दी गई थी। "अजितोदय" काव्यानुसार वह १७४० तक विद्यमान रहा।

२. जंवाईसे तात्पर्य तहव्वरखांसे है। यह इनायतखांका जामाता था।

१. कर्पटहेड़क-कापड़हेड़ा-कापरड़ा खरतरगच्छके आचार्य द्वारा स्थापित राजस्थानका विख्यात जैन तीर्थ है, पीपाड़ स्टेशनसे लगभग नौ मील पर है, इसकी स्थापनाका आदि काल अज्ञात है, सं० १६७८ के प्रतिमालेखसे सिद्ध है कि जैतारण निवासी भण्डारी भाणजीने पार्श्वनाथ स्वामीका प्रासाद वनवाया और खरतरगच्छकी आचार्यशाखीय जिनचन्द्रसूरिने इसकी प्रतिष्ठा सं० १६७८ वैशाख सुदि १५ सोमवारको की, स्वयंभूपार्श्वनाथका यह प्रासाद शिल्पकी दृष्टिसे राजस्थान ही नहीं, अन्य प्रान्तीय मंदिरोंसे भी पर्याप्त ऊंचा है, सं० १६९५ दयारत्न द्वारा प्रणीत कापरड़ा रासमें प्रतिमा आदिका इतिहास वर्णित है।

२. औरंगजेव सं० १७३६ भाद्रपद शुक्ला ९ को दिल्लीसे अजमेरकी ओर चला और सं० १७३७ आश्विन शुक्ला १ को पहुँचा। वीर विनोद पृष्ठ ४६३ के अनुसार आनासागर झील पर ठहरा और सईकोकार यति जयचंदके मतानुसार दरगाहमें ही रात्रि वास किया। क्रुद्ध होकर दरगाहका स्वर्ण कलश उतरवाया और तत्रस्थ प्रबंधकोंका वेतन नहीं दिया। यहींसे तहव्वरखांको मांडल पर अधिकार करनेके लिये रवाना किया।

रह्यौ दरगाहैं राति कवांण तीर अलग करिनैं ।
इकरजीव ... माहरी दार मसली धरीनैं ॥
पुण छन चडी रीसैं चड्यौ दरगाह रो कलश उतारीयौ ।
मुजावरां नें महीनां न दीया परंतौ देपण पधारियौ ॥४३॥
छत्रीसे छत्र जागीयौ सुभिक्ष हुऔ धरती सारैं ।
मेह तूठा पुहवीयें चितैं राजा जसवंतनें चितारैं ॥
सेंतीसें पिण सुभिक्ष सावणें मेह न तूठो ।
भाद्रवै मेह अपार आसू ज़गदीशज तूठौ ॥
काति मिगसर एक मण दोढो पोस माह फागुणे ।
चैत वैशाखें जेठ वलि आसाढ तांई इम गिणें ॥४४॥
सारे धरती सार सैंतीसें सहु मिली उड़ाड़े ।
रामसिंह[1] भाटी रार तुरकां रा कंध दुपाडे ॥
कमसीओत मिली करी चांदावत तरवार रा चोपा ।
आंणंदसिंह[2] अति जोर एकठां मिलि करे . . . पा ।

१. रामसिंह भाटी जसवंतसिंहके पक्के विश्वस्त सैनिक सरदारोंमें थे । महाराजा अजितसिंहकी रक्षाके लिये इनने वहुत कुछ किया था । खांजहांके साथ अजितसिंह विषयक जो संधि हुई थीं उसमें इनका प्रमुख हाथ था । जोधपुरसे तहव्वरखांको निकाल वाहर करनेमें इनने जो जौहर दिखाया, वह अद्भुत् था । वादशाहके अजमेर पधारने पर इनने खांजहांको पूर्व संधिका स्मरण दिलाते हुए वादशाहको समझानेका संकेत किया जिसका मुख्य स्वर था कि अजितसिंहको अपना पैतृक राज वापस मिलना चाहिए । दुर्भाग्यसे इसकी सूचना नागौरके राव इंद्रसिंहको मिल गई जो उन दिनों जोधपुरका कठपुतली शासक वना हुआ था और इसने रामसिंह भाटीका मकान घेरकर निर्मम आक्रमण कर दिया, भाटी प्रत्याक्रमणमें वीरतापूर्वक मारा गया । तुरकोंके लिये यह एक वहुत वड़ा खतरा था, जो समाप्त हुआ ।

२. यह आणंदसिंह कौन था ? पता नहीं चलता । एक आणंदसिंह राठौड़का उल्लेख वीर विनोद पृष्ठ ४७० पर मिलता है जो बणीलके ठाकुर सांवलदासके वंधु थे, राजसागर (राजसमंद) की पाल पर एकत्र हुए सरदारोंमें

केसरीसिंह विजयसिंह वलि रिण में रोर मचावीयौ ।
इंद्रसिंह भाटी अवल वचन दुरंग वतावीयौ ॥४५॥
सोनगरा'''सतधारी सैंतीसें तेग संबाही ।
मेड़तौ डीड़वाणों मारी मारवाडि धरा अवगाही ॥
जालौर तेग जगाइ देपि साहिजादा-सारा ।
''''''मिलिया आइ तहवरपांनि सुण्या मारा ॥
पतिसाह सुं डर'''''' दुरंगदावस सुं जई मिल्यौ ।
बांह बोल लेई एक हुई दषिण दिसा लेई नींकल्यौ ॥ ४६ ॥
सैंतीसें पतिसाह दिल्ली तजि देपै धायौ ।
रांणां उपरि रीसें अजमेरें पाधरौ आयौ ॥

वह भी सम्मिलित था। और वही लड़कर मारा गया जिसकी महाराणाने उस स्थान पर छत्री बनवाई थी, आज भी विद्यमान है। सूचित सांवलदासकी संतति केलवाकी जागीर भुगतती रही।

१. महाराणा राजसिंह पर वर्षोंसे औरंगजेब मन ही मन विद्वेष रखता था। इसके कई कारण थे। शाहजहांकी अस्वस्थताके समयमें इनने मालपुरा टोंक और टोडांको लूंटा, जलाया तथा दंड वसूल किया, चित्तौड़के दुर्गका जीर्णोद्धार करवाया, चारुमतीसे विवाह किया, अजितसिंहको अपने राज्यमें जागीर देकर ससम्मान आश्रय दिया और जजिया करके विरुद्ध बादशाहको सशक्त पत्र लिखा आदि ऐसे कार्य थे जिनमे महाराणा पर वह बहुत ही असंतुष्ट था। वह अवसरकी ताकमें था कि कब आक्रमण कर मेवाड़को विध्वस्त कर दूं। इतिहास समालोचकोंका तो यह भी अभिमंतव्य है कि जसवंतसिंहके अवसानके बाद मारवाड़ पर किया गया मुगल आक्रमण एक प्रकारसे समस्त राजस्थान पर मुगल-शासनकी पृष्ठभूमि मात्र था। बादशाहकी मनोकामना थी कि राजपूतोंके दल-बल और कलकी परीक्षाके बाद राजस्थानको मुगल शासनकी छत्रछायामें ले लिया जाय, राजसिंह इसमें बहुत बड़ी बाधा थे। राठौड़ोंका क्षीण बल देखकर ही औरंगजेबने यह निर्णय लिया। सर्वप्रथम पालमसे शाहजादा अकबरको अजमेरकी ओर रवाना किया और इतना लंबा मार्ग १३ दिनमें तयकर स्वयं भी आ पहुँचा।

तलावें डेरा देई　　देहरा ढाई नांप्या ।
कटक बुलाया केइ　　रही पोते थाँणें राप्या ॥
अजमेरें जई आकृति करी　　रीस राँठोडाँ ऊपराँ ।
इकरजी करूं आपरी　　हणि नांप्र हिन्दू परा ॥ ४७ ॥
देवँसूरी घाटी दिसा　　तहवरपां आयौ धाई ।
भाठै मान्या मुगल　　अकल भीले एहवी उपाई ॥

१. आनासागर पर जहांगीरके वनवाये महलोंमें डेरा लगाया ।

२. वहां मंदिर ढाये ।

३. कई स्थानोंसे फ़ौज बुलवाकर अपने पास जमा कर रखी थी और मेवाड़में कई थानें स्थापित किये, पर वे अधिक समय टिक नहीं सके ।

४. वादशाह् राठौड़ोंसे इतना क्रुद्ध हो गया था कि वह मारवाड़को उजाड़ देने तकको उद्यत था । उसने अपने अमीरोंको आज्ञा दे दी थी कि जोधपुर और उसके आस-पासके प्रदेशोंको वर्वाद कर दो, शहर और गांवोंको जला दो, फलवाले दरख्तोंको काट दो, स्त्री-पुरुषोंको पकड़कर गुलाम वना डालो और सारी रसदको लूट लो ।

—म० म० श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊकृत-मारवाडका इतिहास पृष्ठ २६६

५. मेवाड़के पहाड़ एक प्रकारसे प्राकृतिक दुर्ग हैं । इसमें प्रवेश करनेके जो तीन मार्ग उदयपुर और राजसमंद हैं उनमें देसुरी भी एक है । पश्चिमकी ओरसे प्रवेश इसी मार्ग द्वारा होता है । सापेक्षतः यह रास्ता संकडा है । तहव्वुर-खांको इसी घाटी पर नियुक्त किया था । यद्यपि वह पहाड़ोंसे और विशेप कर इस घाटीसे वहुत डरता था । इतःपूर्व इसे इस घाटेका कटु अनुभव हो चुका था, पर शाहज़ादा अकवरके दवावसे वह मुकर न सका । वह अकवरके साथ उदयपुर भी आया था और लौटते समय चीरवेके घाटेमें झाला प्रताप-सिंहने आक्रमण कर दो हाथी, अश्व और ऊँट लूंटकर महाराणाको भेंट किये । तहव्वरखांका नाम और कार्यका स्वल्प विवरण "राज प्रशस्ति"में भी है । यह इनायतखांका दामाद था, इसने अपने जीवनमें कई उतार-चढाव देखे । "मआसिरुल उमरा"में इसे शाहजादा अकवरका कुमार्गगामी वताया गया है, पर मेवाड़के इनके पराक्रमोंसे औरंगज़ेव इस पर प्रसन्न हो गया था ।

भरे ऊंठ माथा सुं पेसिगसी पतिसाह नें कीधी ।
तहवरपां ताडीयो बुरजदारें गुरज़ां री दीधी ॥
अकब्बर आयौ दुरंग दिसिं[1] पतिसाह रो फिरियो मतौ[2] ।
मेवाड़पति सुं मेल करि दक्षिण[3] दिसि गायो ताकतौ ॥ ४८ ॥
अजमेर थी आयौ औरंग चितौड़ अड़तीसै ।
चैत मास थी.......... सावण तांई रह्यौ लगीसै ।
पनरोत्तरै मालपुरौ मारीयौ राजसिंह रांणै ।
मेरी सघरी दिल विचि मेवाड़ देपण मनठा आंणै ॥
..........से थांणां चूप सुं तुरक तेड़ाया सह आचीया ।
सौहज़ादा[4] निवाव सागला मिल्या तिहां नाठा तुरक दवावीया ॥ ४९ ॥
[5]सीसोद्यां सघला सिरदार छत्रधारी हूआ छलीया ।

---

१. हुसनअलीखांने महाराणाका पीछा कर एक जगह उस पर हमला किया, जिसमें महाराणाका अन्न, तंबू आदि सामान उसके हाथ लगा जिसे वीस ऊंटों पर लाद कर वह वादशाहके पास ले आया ।

—डा० गौ० ही० ओझा—उदयपुर राज्यका इतिहास पृष्ठ ८७०

२. शाहजादा अकबरको दुर्गादास आदि राजपूतोंने फोड़कर अपनी ओर मिला लिया और दक्षिणकी ओर शंभाकी ओर प्रस्थान हो गया तो वादशाहका मत बदलना स्वाभाविक है, वल्कि उसकी चिन्ताएँ और बढ गईं । विवश होकर मेवाड़पतिसे समझौता करना पड़ा ।

३. दक्षिणमें मराठोंने उपद्रव मचा रखा था जिसके दमनके लिये उसे जाना अनिवार्य था ।

४. इस मेवाड़ आक्रमणमें शाहज़ादा मुअज्ज़म, अकवर और आज़म सम्मिलित थे ।

५. कविने सीसोदियोंको उलाहना दिया है कि महावलवान् होते हुए भी वादशाहसे प्रत्यक्ष न लड़े, सशक्त शाहसे भिड़े नहीं । यदि कविने तथ्यों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया होता तो संभवतः उलाहनेकी नौवत न आती । इतनी विशाल संहारिणी सेनाके आगे अपने सहयोगियोंको कटवा देनेमें कोई शौर्य नहीं था, रणनीतिविशारद राणांने सचमुच वुद्धिमानीका

मेवाड़ धरा उचालि, भिड्या नहीं पतिसाह सुं वलीया ॥
राणों राजसिंह टेक रापिवा, भापरे छप्पन रे पैठो ।
भील रह्या तिहाँ माँड़ि तियाँ में हुतौ जे दिल रो धेठौ ॥
देवसूंर री घाटी ढाहि दी तलावँ ऊपर ढाह्या देहरा ।
चीतोड़ ऊपरा चढि जोईया सिरें ऊपरि रापी सेहरा ॥५०॥
आया देव इकलिंग धरती नें रापण दोडी ॥

परिचय दिया। परामर्शदाताओंने उन्हें समुचित सलाह दी कि सम्मुख लड़नेकी अपेक्षा महाराणा प्रतापके चरण-चिह्नों पर चल कर इस समय पहाड़ोंकी शरण ली जाय और वहाँसे गुप्त रूपसे मुगल कटक पर आक्रमण किया जाय, तदनुसार राणां राजसिंहने छप्पनके पहाड़ोंका सहारा लिया और उदयपुर खाली कर दिया। पीछेसे सेनाने आकर उदयपुरके प्रधान मंदिर जगदीशजीके अतिरिक्त नगर निकटवर्त्ती १७२ मंदिर ढा दिये जिस पर प्रसन्न होकर शाहने हसनअलीको वहादुर आलमगीर शाहीके विरुदसे अभिषिक्त किया।

यह वही हसनअलीखां है जो महाराणा राजसिंहका पीछा करने अरण्यमें गया था, पर १५ दिन तक परेशान होकर वापस लौट आया।

१. इस घाटी पर शाहज़ादा अकवरको तहव्वुरखाँके साथ नियुक्त किया गया था। इसका एक कारण यह भी था कि वहाँसे कुंभलगढ़ पर सरलतयासे आक्रमण किया जा सके, जहाँ युद्धक्लान्त राजपूत विश्राम कर रहे थे। पर जैसा कि पूर्व टिप्पणमें सूचित किया जा चुका है कि किसी भी मूल्य पर तहव्वरखाँ उस ओर बढ़नेको तैयार न था। उसके मस्तिष्क पर राजपूतोंकी छाया इस प्रकार पड़ गई थी कि जैसे स्वप्नमें उसे वे ही वे दिखलाई पड़ रहे थे।

२. कविने सरोवरका नाम निर्देश नहीं किया है, पर वह था उदयसागर जिसका निर्माण महाराणा उदयसिंहने (सं० १५९४-१६२८) सं० १६१६-१६२८ को पूर्ण करवाया। इस पर उसने तीन मंदिर वनवाये थे। इन्हीं मंदिरोंको शाही सेनाने धराशायी किया।

३. उदयपुरसे लगभग तेरहवें मील पर अवस्थित एकलिंगजी कैलासपुरी आर्य-कुलादित्य मेदपाट—मेवाड़के महाराणाओंके परमाराध्य कुलदेवका पावन स्थान है, यहाँकी पार्वतीय सुषमा निहारने योग्य है, किसी समय भगवान्

एकलिंगजीका पुन्यग्राम गहन वनोंसे परिवेष्टित था, वर्षाकालमें यहांका प्राकृतिक सौंदर्य खिल उठता है और लघु कैलासका सुस्मरण कराता है, जनश्रुति है कि पाशुपत सम्प्रदायके महामुनि एवम् कुशिकशाखीय हारीत-राशिने इसे अपनी तपोभूमि बनाया था और गुहिलावतंस बापा रावलको वर देकर एकलिंगजीका वार्णलिंग स्थापित किया था, इसका संस्थापन काल सं० ७९१-८१० का मध्यवर्ती काल माना जाता है, उस समय एकलिंगजीके प्रासादका रूप कैसा रहा होगा ? नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है, वर्तमानकी चतुर्मुखी शिवलिंगकी संस्थापना महाराणा हम्मीरने सं० १४२१ के पूर्व की थी, इसके समर्थक अनेक ऐतिहासिक प्रमाण विद्यमान हैं, मुसलमानों द्वारा आक्रमणके कारण एकलिंगजी महादेवके भव्य प्रासादको क्षति पहुँची थी जिसका जीर्णोद्धार भारतीय संस्कृति और साहित्यके अमर गायक महाराणा कुम्भकर्णके पुत्र महाराणा रायमलने सं० १५४५ में करवाया था, अतः शैल्पिक विकासके अध्ययनके लिए प्रासादमें अति प्राचीनत्व जैसा कुछ रहा नहीं है, तथापि तात्कालिक शिल्प और मूर्तिविज्ञान-वैविध्यको दृष्टिसे मंदिर अध्ययनकी सामग्री संजोए हुए हैं, मेवाडमें यही एक ऐसा शिवप्रासाद दृष्टिगोचर हुआ जिसके सभामण्डपीय स्तंभोंके चतुःभागमें चतुर्मुखोंसे संबद्ध रूपोंको शक्तियोंका अंकन किया गया है, इस प्रासादकी प्रतिमाओंमें कलाकार शिल्पियोंके नाम भी मिलते हैं, इनमेंसे कतिपय नाम तात्कालिक प्रशस्तियोंमें उत्कीर्णित हैं, यहाँ पर लगी दक्षिणद्वार प्रशस्ति मेदपाटके इतिहासकी महत्वपूर्ण सामग्रीसे परिपूर्ण है।

दशम शतीके बादसे यह स्थान पाशुपत परम्परा का केन्द्र रहा है, कहना यों चाहिए कि सम्पूर्ण मेवाड उन दिनों इस परम्परासे प्रभावित था, एकलिंगजीके मुख्य अर्चक हारीतराशि से आठवीं शती के प्रारंभ तक पाशुपतीय मुनि ही रहे, यद्यपि इस बीच सामयिक परिवर्त्तन हुए पर वे न गण्य ही थे, कारण कि पाशुपत कालान्तरमें योग साम्यके कारण नाथ-सम्प्रदायसे प्रभावित हो गये थे, स्थानीय अर्चक वज्रोलीमुद्राकी साधनामें अनुरक्त रहे, और कालान्तरमें नैतिक स्तर गिरता गया, महाराणा जगत्-सिंह (प्रथमके) राज्य कालमें भ्रष्ट पाशुपतोंको हटाकर उनके स्थान पर वाराणसीसे निमंत्रित संन्यासी परम्पराके रामानन्द स्थापित हुए, तभीसे एकलिंगजीके मुख्य पुजारी संन्यासी होते आये हैं, इनका दक्षिणदिशामें बना पुराना बहुकक्षीय और भूमिगृहयुक्त मठ प्रेक्षणीय है, इसीमें पाशुपतोंका

वैयक्तिक पूजा-स्थान, बाल-प्रासाद तथा शक्तियंत्र स्थापित हैं, चित्रकलाकी दृष्टिसे मठमें अध्ययनकी प्रचुर सामग्री है, अठारहवीं शतीके भित्तिचित्र इतिहास और तात्कालिक कैलासपुरीके भव्य भाव प्रस्तुत करते हैं, संन्यासियोंकी समाधियाँ और तत्रोत्कीर्णित प्रशस्ति शोधककी तृप्ति करती हैं ।

प्रारंभिक पाशुपत मुनि विद्योपासक थे, परन्तु तत्र प्राप्त प्राचीन हस्तलिखित साहित्यसे अनुभव होता है कि संन्यासी परम्परा आनेके बाद सापेक्षतः इस दिशामें विशेष कार्य हुआ, संन्यासी महन्तोंने स्व सम्प्रदाय-पोषक दार्शनिक साहित्य लिपिबद्ध किया, लेखकोंको तदर्थ प्रोत्साहित किया और अर्थद्वारा साहित्य खरीद कर ज्ञानभण्डारकी स्थापना की, अनेक कृतियें चित्रकलासे सुसज्जित कारवाई, जो उनके कला प्रेमको परिचायिक हैं ।

गोस्वामी प्रकाशानन्द आदि संन्यासियोंकी समाधियोंमें जटिल ऐतिहासिक शिला-प्रशस्तियाँ उनके अतीत पर नूतन प्रकाश विकीर्ण करती हैं, यद्यपि समाधियोंके निर्माणमें पुरातन प्रतिमा आदि अवशेष भी जड़ दिये हैं, भारतमें अन्यत्र भी ऐसे प्रयत्न हुए हैं जहाँ पुरातन कलापूर्ण पाषाणोंको मनमाने ढंगसे तराश कर इमारत खड़ी कर दी है ।

प्रारंभिक कालके स्थानीय पाशुपत-अर्चक विद्योपासनामें अनुरक्त रहते थे और शाखामठ-केन्द्र द्वारा स्वमतका प्रसार किया करते थे, परन्तु पाशुपत मुनियोंकी कोई साहित्यिक या स्वमतसंवर्द्धिनी रचना आज तक प्राप्त नहीं हो सकी है, यहाँ तक कि एकलिंग-पूजापद्धतिकी भी प्राचीन प्रति उन्नीसवीं शती-पूर्वकी प्राप्त नहीं है ।

एकलिंगजीके हस्तलिखित ज्ञानभण्डारके निरीक्षणसे ज्ञात हुआ कि संन्यासी परम्परा प्रतिष्ठित किये जानेके अनन्तर यहाँ साहित्यसाधना और उपासना साकार हुई, प्रकाशानन्दजी, कृष्णानन्दजी और रामानन्दजी (दूसरे) आदि न केवल उच्चकोटिके साहित्य सेवी ही थे, अपितु उनने ज्ञानभण्डार परिवर्द्धनार्थ मोढ़ परिवारके कई लिपिक नियुक्त किये थे, यही कारण है कि एकलिंगजीमें लगी अनेक ऐतिहासिक प्रशस्तियोंकी पुरातन प्रतिलिपियाँ प्राप्त होती हैं, पाशुपतसूत्र, शिवगीता और शिवरहस्य जैसी रचनाओंकी परिष्कृत प्रतियाँ ज्ञानागारमें सुरक्षित हैं, संन्यासी होते हुए भी कलाके प्रति उनके हृदयमें आकर्षण था, अनेक प्रतियोंको गोस्वामियोंने चित्रित करवाया, तथा पटरियोंको भी भव्य भावपूर्णरेखाओंसे विभूषित करवाया, वर्त्तमानमें इस आसन पर सवाई गोस्वामीजी महाराज श्री

संग्राही वैठाँ सादड़ी
आदीसरजी एकणि ओडी ॥

प्रेमानन्दजी महाराज विराजमान हैं जो पूजा-अर्चाके अनन्तर साहित्य-साधनामें ही व्यस्त रहते हैं, इनने पुरातन परम्पराको आज तक संजोए रखा है, सहयोगी अर्चकोंमें पंडितप्रवर श्री कृष्णलालजी सा० मोढ़ आदि हैं।

एकलिंगजीके प्रासादकी परिधिमें कुम्भश्याम आदि अनेक भव्य प्रासाद बने हैं, उनमें उल्लेखनीय है लकुलीशप्रासाद जिसका निर्माण सं० १०२८ महाराजा नरवर्म्मने किया था, इसकी शिलाप्रशस्ति भी प्रासादमें लगी है, मूर्त्तिकला और शिल्पकलाकी दृष्टिसे अध्ययनके नव्यसूत्र उपस्थित करता है, इसमें स्थापित लकुलीशकी प्रतिमा भारतमें अपने ढंगकी एक ही है, इस मंदिरकी शैलीके दो और प्रासाद भी कैलासपुरी और नागदामें वर्त्तमान हैं, एक तो तक्षकेश्वरका जीर्णोद्धृत देवालय और दूसरा अलोपपार्श्वनाथ प्रासाद, इन सबकी तमालपत्रिकाएं प्रेक्षणीय हैं।

संस्कृति, प्रकृति और कलाके सुरम्य धाम एकलिंगजी एवम् तत्समीवर्त्ती कलात्मक अवशेषोंकी फोटोग्राफी मेरे अनुरोध पर श्रीकृष्णदेवजी (तात्कालिक डिप्टी डाइरेक्टर जनरल आर्कियोलोजिकल डिपार्टमेंट गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया) ने अपने विभागीय कुशल फोटोग्राफ़र श्री श्रीगोविंदजी त्रिवेदीसे करवा दी है, तीन वर्ष तक परिश्रम कर यहाँका धर्म, संस्कृति और कलाकी दृष्टिसे सर्वांगपूर्ण इतिहास इन पंक्तियोंके लेखकने एकलिंगजी न्यासकी ओरसे तैयार किया है।

सईकीकारने एकलिंगजी महादेव जैसे देवोंको भी मुगल सेनाके विरुद्ध लड़नेकी कल्पना की है।

१. सादडी मेवाड़के प्रथम सरदार चन्द्रवंशी झालोंका ठिकाना है, जो मूलतः सिंध प्रदेशस्थ कीर्त्तिगढ़के मकवाना थे, बादमें गुजरातमें बस गये, और सौराष्ट्रमें हलवदके स्वामी बने, इनके वंशज अज्जा और सज्जा काठियावाडका परित्याग कर रायमल और सांगाके पास चले आये, ये राजाराणा कहलाते थे, मेदपाटकी कीर्त्ति रक्षामें इस वंशने अनुपम योग देकर अपनी गौरवमय परम्परा कायम रखी थी।

सादडी शताब्दियोंसे जैन संस्कृतिका केन्द्र रहा है, कविवर मेघविजय और विनयविजयने अपनी रचनाओंमें इसका गौरव संजोये रखा है, सईकीकारने आदीश्वरजीका जो उल्लेख किया है वह राणकपुरसे संबद्ध जान

रपवाला रिषभदेव[1] उदेपुर थी कोस अढारै ।
अठांणे थी कोस अढी तिहां सुषदेव[2] सिधारै ॥
सहू देव आवी सामुंठा, पतिसाह सुं साथै हूआ ।
तुरकां नें ढाहि ढिंग कीया तिहां तुरक घणां दीठा मूआ ॥५१॥
राणें राषी रेप[3] आप मिलीयो नहीं जाई ।
पेचकसी दीधी ति वार बेटां नें पगे लगाई ॥

पड़ता है, प्रकृतिकी सुकुमार गोदमें बना यह भव्य और कलापूर्ण प्रासाद भवन निर्माण कलाका अन्तिम और उत्कृष्ट उदाहरण है, परन्तु खेदकी बात है कि ऐसी आध्यात्मिक और कलाकी समन्विति कृति पाकर भी वहाँके व्यवस्थापकोंने इनका सौंदर्य और कलाकी दृष्टिसे आजतक मूल्यांकन नहीं किया है।

१. धूलेव नगरस्थित (ऋषभदेवका तीर्थ होनेसे इसे "ऋषभदेव" भी कहते हैं) आदीश्वरजीकी प्रसिद्धि आज केशरियाजीके नामसे विशेष है, सभी सम्प्रदायके लोग यहाँ अपनी भाव भरी श्रद्धांजलि समर्पित कर कृतकृत्य होते हैं, यहाँका प्रासाद भी शिल्प कलाकी दृष्टिसे अध्ययन की वस्तु है, परन्तु इस दिशामें आज तक किसीने चरण नहीं बढ़ाये।

२. अठाणाके निकट सुखदेवजीका यह स्थान उन दिनों भी प्रसिद्ध रहा जान पड़ता है, कविने इन शान्तिप्रिय देवताओंको युद्धक्षेत्रमें ला खड़ा किया है, कल्पना सुखद तो नहीं कही जा सकती।

३. राणा राजसिंह जबतक जीवित रहा उसने अपनी रेप-रेखा-मर्यादा-टेक खूब निभाई। किसी के आगे वह नहीं झुका। सं० १७३७ में राजस्थान में कुछ ऐसी राजनीतिक स्थिति बन गई कि राठौड़ सरदार दुर्गादास ने अकबर को फोड़कर अपने पक्ष में कर लिया और इधर युद्ध चल ही रहा था। इतने में राजसिंह का सं० १७३७ कार्तिक शुक्ला १० को आकस्मिक देहावसान हो गया। नहीं कहा जा सकता अकबरके फूट जानेके बाद भी यदि अधिक समय राजसिंह जीवित रहता तो इतिहास कैसा बनता ?

४. संवत् १७३८ श्रावण कृष्णा ३ को जयसिंह (राजसिंहका पुत्र) के साथ मुगलोंकी संधि हुई जिसका उल्लेख स्व० गौरीशंकर हीराचंद ओझा अपने राजपूतानेके इतिहास उदयपुर राज्यके इतिहास पृष्ठ ८९७ में इस प्रकार किया है—

राणों राजसिंह[1]···जीयो ·····'भापरे ।
मूऔ पाणी लागीनें अकड़ता वड़ आकरे ॥
जिमतिम राख्या पातसाह आवीनें पाछो आसर्यो ।
सिरें छत्रधारी साव्रता र[2]··· सांमो रामसिंह कर्यो ॥
अड़तीसे वरसे एक मेह हुओ सावण मांहे ।
औरंग अजमेर मांहि सपर विचार्यो मन में साहे ॥
धांन वेची रूपैया वध्या आकरा औरंगज़ेवीं ।
मरे मृगीथी[3] मनुप ठाम-ठाम अजगैवी ॥

"दिलेरखांने राजसमुद्र पर महाराणासे मिलनेका दिन निश्चय कर उसको सूचना दी। तदनुसार महाराणा अपने सरदारों, ७००० सवारों और १०००० पैदलों के साथ राजनगर पहुँचा, तो दिलेरखां, हसनअलीखाँ, राठौड़ रामसिंह (रतलामवाला) और हाड़ा किशोरसिंह (जिसने धरमतके युद्धमें ८४ घाव तलवारोंके सहे थे) पेशवाई कर उसे शाहजादेके पास ले गये।"

१. महाराजा राजसिंहकी मृत्युके संबंधमें मतभेद है। इनका अवसान कुंमलगढ जाते हुए ओड़ा नामक गाँवमें हुआ था। वीरविनोदकारने सूचित किया है कि ऐसा माना जाता है कि किसीने उन्हें भोजनमें विष खिला दिया था, कल्पनाको पंख लगाते हुए कविराजने अपना अभिमन्तव्य प्रकट किया है कि ऐसे पुत्रहंताको किसीने विष दे भी दिया हो तो आश्चर्य नहीं। वह कैसे मरे यह तो निश्चित कहना कठिन है, पर समसामयिक कवि जयचन्दने तो अपना मत स्पष्ट कर दिया है कि इन्हें जंगली पानी लग गया था अतः देहान्त हो गया।

२. ओझाजीका उद्धरण पृष्ठ ३६टिप्पण ४ में दिया गया है। उसमें भी रामसिंह का नाम है जो रतलामके शासक, रतनसिंहके पुत्र और राजसिंहके समधी थे, कारण कि इनकी पुत्री अमरकुंवरका विवाह राजसिंहके पुत्र सरदारसिंहके साथ हुआ था। हालांकि यह विवाह उसे बहुत महँगा पड़ा था, ११ वर्षकी वयमें अमरकुंवरको सती होना पड़ा था।

३. इसका तात्पर्य मरकी या प्लेग से है। क्योंकि जो लक्षण दिये गये हैं वे प्लेग पर चरितार्थ होते हैं न कि मृगी पर। प्लेग संक्रामक रोग है और

ताव चढीयौ गोली नींकलै	घर मांहिला मन सु डरै
देव दुष्य मनांयां न रहै	ऊपध कीयै न ऊगरै ॥ ५३ ॥
अठतीसै उतपात	नाव दुरभिक्ख दुनी में ।
गुणतालें मूआ घणां	मृगी करि बहु आवनी में ॥
साह रजपूत संसार	तुरक हुआ दुरभिक्खं दुषीया ।
विकाणां वाणीयां भूपें	पीड़ाया अभूपीया ॥
वीकानेर नागोरें भाव करि	सोजत अजमेरे सहु दुषी ॥
जोधपुर मेड़ते जैतारणें	शान्ति पूज्यां हुआ सुषी ।५४॥
पतिसाह भादूवें मांहि	मलप्पो बूंदी[२] कोटे ।
अठतीसै धरा``मांहि	चालीयै उपर चोटे ॥

शीतकालमें अधिक फैलता है। ३-४ दिन ज्वर रहकर जंघा या बगल में गिल्टी निकलती है और शीघ्र ही प्राण हरण कर लेता है। कहा जाता है कि छठवीं शताब्दी में यह रोग सर्व प्रथम लेवांट से यूरोप में गया था, वहीं से सर्वत्र फैला। भारतमें २० वीं शती तक इसका प्राबल्य रहा। अब तो नाम शेष रहा गया है।

—स्व० नगेंद्रनाथ वसु—हिन्दी विश्वकोश भाग १५ पृ० ३७।

१. जैन समाजके सुविहित परंपरानुगामी खरतरगच्छमें "शान्तिपूजा" का प्रयोग सामूहिक जन कष्ट निवारणार्थ वर्षोंसे प्रयुक्त रहता आया है।

२. यह समझ में नहीं आया, पर सं० १७३८ वैशाख कृष्ण ८ को दक्षिणमें औरंगाबाद के समीप भावपुरामें बूंदी नरेश भावसिंहजी का स्वर्गवास हुआ और उसी वर्ष अनिरुद्धसिंह १५ वर्ष की वयमें गद्दी पर बैठा। औरंगजेब ने खिलअत और हाथी टीकेमें प्रेषित किया। बूंदी राज्यके बलवणके जागीरदार दुर्जनसिंह, जो अनिरुद्धसिंहसे वैर रखता था, ने शाही सेनासे लौटते ही मरहठोंसे संपर्क स्थापित कर बूंदी पर अधिकार कर लिया। बादशाह को जब ज्ञात हुआ तब उसने मुगलखां, बनेड़ाके भीमसिंह, रुद्रसिंह भदौरिया और सैयद मुहम्मदअलीको भेजकर अनिरुद्ध का अधिकार स्थापित करवाया। "मलप्पो बूंदी कोटे" शब्दका संकेत संभवतः इसी घटना से जान पड़ता है।

बीजापुर पातसाह देपी	सकल फौज नें तेड़े ॥
भली वेला-री भूईं कोट	···पाडियौ साहबी—सावती ।
वारावारी सुं तेग बांधतो	फौजां विन्हें···वनी ॥ ५५ ॥
दिल्लीपति दक्षिण गयो,	अकबर दुरंग रे केड़े ।

१. संवत् १७३८ भादों सुदि ७ को औरंगजेब अजमेरसे दक्षिणकी ओर प्रस्थित हुआ और सं० १७३९ आषाढ़ कृष्ण ४ को औरंगाबाद पहुँचा। उस समय दक्षिण की राजनैतिक स्थिति ऐसी थी कि उसका वहाँ जाना नितान्त आवश्यक था। अकबर बाग़ी होकर दक्षिण आकर शंभाजीसे मिल गया था जो मुगल साम्राज्यके लिये मंगलप्रद नहीं था। शिवाजीकी मृत्युके उपरान्त भी वहाँके शासकोंके हृदयमें मुगलोंसे प्रतिशोध लेनेकी भावना प्रबल थी। औरंगजेबकी आँखें बीजापुर और गोलकुंडा पर मंडरा रहीं थी। महाराष्ट्र पर भी वह अपना आधिपत्य चाहता था, तदर्थ बीजापुरकी सहायताकी अपेक्षा थी, पर बीजापुर वाले यह भलीभाँति अनुभव करने लगे थे कि हमारी रक्षा मरहठों द्वारा ही संभव है। उनका झुकाव संभवतः मरहठों की ओर था। दुर्भाग्यसे मराठा शासक शंभा विलासी और कम लोकप्रिय निकला, वरना गोआ पर मराठोंने अपना झंडा गाड़ दिया होता। बादशाह जिस भावनाको लेकर दक्षिण गया था वह मूर्त्त रूपमें सम्मुख आ गई। सं० १७४३ में बीजापुर पर शाहने विजय पाई।

२. वीर शिरोमणि दुर्गादास गुजरातकी ओर प्रयाण कर चुके थे, पर मनमें मारवाड़ को स्वतंत्र करने की प्रबल भावना संजोये हुए थे। एकाएक मनमें विचार कौंधा कि क्यों न किसी शाहज़ादेको अपने पक्षमें कर लिया जाय। प्रथम तो मोहम्मद आजमको बादशाहतका लालच दिया गया, यह सफल रहा। उसे समझाया गया कि तुम्हारा पिता धर्मान्धताके कारण श्रम और सत्तासे अर्जित साम्राज्य लक्ष्मी व्यर्थ ही नष्ट किये जा रहा है, अतः हम आपको बादशाहत दिलवायेंगे और आप अजितसिंहका पैतृक राज्य बादशाह बननेके बाद सौंप दें। शाहज़ादाको इन वीरोंकी भुजाओंका प्रत्यक्ष अनुभव था। उसने अपने अनुभवी सेनाका तहव्वुरख़ांसे परामर्श लेकर राजनैतिक शर्तें स्वीकार की और चार मुल्लाओंने औरंगजेबके विरुद्ध फ़तवा दे दिया। १७३७ माघ वदि ९ में अकबरने अपने आपको बादशाह घोषित कर दिया। जब औरंगजेबको यह संवाद मिला तो बहुत चिंतित हुआ कारण कि उन दिनों उसके पास सेना सीमित थी यदि अकबर उन्हो दिनों

गुणतालीसैं कण नहीं गाढ़ मुई परेठे दोरे ।
मेह न हुआ आसाढ़े नाज मुंहगो कुण जोवे ॥
एकैं रुपये मण आध जगत में बाजरी बिकाई ।
पुण रुपये मासो हेम मासो रूपो टके मुलाई ॥
काढ़ै व्याज गहणां धरि करि देवे दांम पचोतरा ।
हुयो दुकाल सारी धरा साह चोर एकै तोलरा ॥५६॥
चालीसैं चिहु दिसि मेह आसाढ़ में हुओ अतारो ।
अड़क बाजरी अन्न अति नीपनों अंत न पारो ॥
मण छ ६ रुपये बाजरी मोठ पिण तिण हीज भावे ।
इकतालें मेह अधिक धांन तिहां मोटे दावें ॥
मण अढारे रूपीये बाजरी थलीए[2] सात मण तिल थयां ।
मण अढी गोहूं मापरा[3] चारा छत्तीस पारा भया ॥५७॥

पिता पर आक्रमण कर देता तो सम्भवतः इतिहास दूसरा होता, पर वह तो बादशाहतके नशेमें इतना चूर हुआ जा रहा था कि १२० मीलका मार्ग उसने पूरे १५ दिनमें तय किया, तबतक बादशाहने अपनी सुरक्षाका पूर्ण प्रबन्ध कर लिया ।

राजपूतोंने कुटिलतासे काम लिया, पर औरंगजेब भी कच्ची गोटियां नहीं खेला था । पहले तो इनायतखां द्वारा लालच और भय दिखाकर तहव्वुरखांको अपनी ओर मिलाया, तदनंतर एक पत्र अकबर के नाम पर भिजवाया गया जिससे बहादुर राजपूतोंके मनमें अकबरके प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया । फलतः अकबरकी सैन्य सामग्री लूटकर कई राजपूत चलते बने । (सं० १७३७ माघ सुदि ७) शौर्य और बुद्धिमत्तामें कहीं परस्पर वैर तो नहीं ? राजपूतोंके इस कृत्य पर आश्चर्य तो अकबरको भी हुआ होगा । दुर्गादासने इसे आश्वस्त किया और सं० १७३८ आषाढ़ माहमें इसे लेकर शंभाजीके पास पाली सुरक्षित रूपसे पहुँचा दिया ।

१. खरडा एक ऐसा रोग है जिसके शिकार पशु होते हैं । इसमें पैर सड़ जाते हैं । चलना-फिरना बन्द हो जाता है ।
२. बीकानेरके निकटका भूभाग थली कहलाता है ।
३. नाप विशेप ।

सगलो मेल्यो साथ देश-देशपति तेड़ाई।
चाव थी रह्यौ वरस च्यार अड़ीनें अकल उपाई॥
हाड़ो राउ भावेसिंह हठी अनोपसिंह वीकानेरीयो आछै।
रांमपुरीयो मुंहकमसिंह साथे साहरे रहीया पाछै॥

---

१. ये वृंदावती-बूंदीके शत्रुशाल (सं० १६८८-१७१५) के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६८१ फागुन कृष्णा ३ को और राज्याभिषेक सं० १७१५ में हुआ था। इनके पिता पर औरंगजेब इसलिये अप्रसन्न था कि वह सामूगढ-युद्धमें दाराकी ओरसे लड़े थे। पुत्र भावसिंह भी पिताके चरण चिन्हों पर गतिमान होते, पर औरंगजेबने नीतिसे काम लिया और भावसिंहको तीन हजारी जात और दो हजार सवारोंका मनसब, नगारा तथा झंडा प्रदान कर अपनी ओर मिला लिया। मूलतः यह वीर प्रकृतिके और संस्कारशील शासक थे। अपने शौर्यका इनने कई वार सफल प्रदर्शन कर मुगल शासकोंकी दृष्टिमें अपने आपको ऊँचा उठाये रखा। औरंगजेबने गुप्तरूपसे दिलेरखांको दक्षिणमें आदेश भिजवाया था कि वीकानेरके कर्णसिंह को समाप्त करवा दिया जाय, पर ठीक समय पर यह सूचना भावसिंहको मिल जानेसे इस षड्यंत्रसे कर्णसिंहको वचा लिया। इनने औरंगावादके निकट अपने नामसे "भावपुरा" बसाया था, वहीं सं० १७३८ वैशाख वदि ८ को इनका अवसान हुआ।

हिन्दीके प्रख्यात कवि मतिराम इनके दरवारमें कुछ दिन रहे थे। इनकी रचना "ललितललाम" में कविने भावसिहकी कीर्त्तिगाथा स्वरूप कई पद्य लिखे हैं। कवि राम (जो भरतपुरके राज्याश्रित कवि थे) ने ऐतिहासिक व्यक्तियोंके पद्योंका सुंदर संकलन किया है और स्वहस्तसे ही प्रतिलिपित है, इसमें भावसिंहसे संवद्ध दो पद्य चिंतामणि प्रणीत है, नहीं कहा जा सकता ये प्रकाशित हैं या नहीं ? । यथा—

तनै छत्रशाल के नरिंद राउ भावसिंह रावरे गयंद वरनत कवि अटकैं।
कीच माची मेदिनी चुवत मद धारनि बहारनि चखार पारवार धार फटकैं॥
चिंतामनि कहै भू मैं ठाढ़े वाढ़े विधि सम अड़े आसमानमें विमान जाइ हटकैं।
यातैं वांई दाहिनी वां चढै मारतंड मति भू मैं सुंडा-दंडनि झटकि रथ पटकै॥
फौजें महां पावैं गढ़ कोटनि गिरावैं फिरि-मिलावै यौं दिसात जात घात है।
दारन दुवन हेते देखत पलाइ गये काहू दौरि दावि मारैं मारैं ये रिसात हैं॥
महाराज सिरोमनि भावसिंह जु कैं यये दुरद भिखारिनुं कैं ठाढ़े बरसात है।
झूमत झकत सिर झारत झर-झणात राज काज छूटैं गजराज पछितात है॥

तिन्हैं साहिजादा लिज कन्हैं मिलक उंबराव सगला मिली ।
वहादरखां असिथ्रपीं निवाब सवि गह्यौ विचार करै अटकली ॥५८॥
अकवर दुरंग मिली एकठा गया संभू रे चरणें ।
वीजापुरैं पातसाह विचार करै करवा अपणें ॥
जोयो पापती फिरि कोट......चौडी पाई ।
चढ्यौ न जाए चडी चोट किहां ही न लागै पांडी...लाई ॥
आज दीयो कोट घेरिनें फेरि दुहाई पतिसाह री ।
थाप्यौ सिंहासन नवकोडि रो हिवै परवाह नहीं कोहरी ॥५९॥
वीजापुर रो पतिसाह बांधी लई निजरबंद करी नें लीयौ ।

---

१. यह औरंगजेबका धाय भाई था । इसने औरंगजेबकी रीति-नीतिको क्रियान्वित करनेमें पूर्ण सहयोग दिया था ।

२. यह आजमके साथ दक्षिणसे आया था, पर ग्वालियर ही ठहर गया था । "अजितोदय काव्य" में संधि प्रस्तावकके रूपमें इनका नाम आता है ।

३. शंभाजी छत्रपति शिवाजी के पुत्र थे । वड़े होने के कारण इन्हें शिवाजी का सिंहासन अवश्य प्राप्त हो गया था, पर जनार्दन पंत आदि सरदार इनके अनुकूल नहीं थे । इनके शासन काल में राज्य की कीर्ति को उज्वल करने वाले सरदारों की उपेक्षा होती रही । प्रधान मंडल की भी इनने कभी पर्वाह नहीं की । इनका मुख्य परामर्शदाता उत्तरभारतीय कवि कलश था जो मंत्र विद्या-निष्णात समझा जाता था । राठौड़ दुर्गादास जव शाहजादा अकवर को लेकर शंभा के पास पहुँचा तो वह अचकचा गया, पर कलश के समझाने से वात वन गई । शंभाजी वीर अवश्य थे, पर युद्ध क्षेत्र का अनुभव नहींवत् था, वौद्धिक चातुर्य का तो प्रश्न ही कहां उठता है ?

सं० १७४५ फागुन शुक्ला सप्तमी को कवि कलश के साथ शंभाजी वहादुरगढ़ में औरंगजेव के समक्ष उपस्थित किये गये और असभ्य व्यवहार के कारण तप्त लोहशलाका दोनों की आँखों में फेर दी गई । जयचंद ने तो यहां तक सूचित किया है कि शंभाजी के कुठार से टुकड़े-टुकड़े कर दिये । इनके पुत्र साहूजी-दूसरे शिवाजीको सात हजारी मनसव प्रदान किया गया ।

४. कवि नें वीजापुर के पातसाह का नाम नहीं दिया है, पर उन दिनों तत्रस्थ शासक सिकंदर आदिलशाह था जिसने औरंगजेव के सामने सं० १७४३ में आत्म समर्पण कर दिया ।

पछैं भागनेगरें जाई बोलबंधै परधांन सुं मिलीयौ ॥
तिणनें कह्यो तेग घणी कुं मारी भागनगर थुं तेरे तांई ।
तिणें महि जांण्यौ लिगार मार्‌यौ पतिसाह के तांईं ॥
भागनगरें दुहाई फिरि ली पतिसाह औरंगजेब री ।
एकंडि परधांन नै मारीयौ घींसीयौ बांधी जेवरी ॥६०॥
दुरंगं अकंबर नें लेई आगुलेइ घाट उतारीयो ।
पांणीपथें पाधरौ तां ख़ूरे साथ—मारूवाडें आवीयौ ॥
राष्यौ वाहड़मेर जैसलमेर रे देशमें ।
अमरसिंह राउल रे रह्यो आटें उदेसिंह वीठलोत आवीनें ॥
उदयसिंह वीठलोत आवीनें अजितसिंह नें लेईनें ।
मारी पाए मुलक सहु अकबर अजितसिंह विहुं देइनें ॥६१॥
वीजापुर भागनगर देइ गोलंकुंड री गली सगली ।

---

१. भागनगर हैदराबादका ही अपर नाम है। कुतुबशाह मुहम्मद कुलीने सं० १६४६ में अपनी पत्नी के भागमती के नाम पर बसाया था।

२. इसका मूल नाम "एकान्त" था।

३. दुर्गादास दक्षिणसे सं० १७४४ में पानीपत होते हुए मारवाड़ पहुँचा। सईकीसे तो यही पता चलता है कि शाहजादा अकबर भी साथ ही था जिसे जैसलमेर या वाग्भटमेरु-बाहड़मेर जैसे दुर्गम प्रदेशमें रखा गया। अन्य इतिहासकारोंका मत इससे भिन्न है।

४. सं० १७४४ में अकबर जलयानसे ईरान चला गया था, पर इनके पुत्र-पुत्री बुलंदअख़तर और सफ़ियतउन्निसा-राठौड़ोंके संरक्षणमें रहे जिनकी शिक्षाकी समुचित व्यवस्था थी।

५. यह जैसलमेरके शासक थे और इनका राज्य काल सं० १७१६–१७५८ तक रहा है। राठौड़ों और बलूचोंसे इनने ख़ूब लड़ाइयाँ की। पोकरण, फलोधी और मालानी परगने औरंगजेबने इन्हें जागीरमें दिये थे, पर बादमें जोधपुरके राठौड़ोंने छीन लिये।

६. यह दुर्ग हैदराबादसे सात मील पश्चिममें अवस्थित है। वरंगलके राजाने इसे बनवाया था। सं० १४२१में गुलबर्गके मुहम्मदशाह बहमनीके अधिकारमें आया, इसी कारण कुछ दिनों इसका नाम "मुहम्मदनगर" भी रहा। बहमनियोंके पतनके बाद यही "गोलकुंडा" नामसे दक्षिणकी समृद्धिका प्रतीक

र..............आए	पीया मही में कहाणों अवरंग महबली॥
सिवो शिवसरण सुण्यौ	गढ़ बेठौ शंभू सवाई ।
भेद ब्राह्मणें पकडीयो	महादेव के देहरे जाई ॥
शंभू नें साह्यौ छल भेद	करि पाटीया में वांधी करी ।
कीयौ टूक-टूक कुठार सुं	मनमें गुमांन बहु धरी ॥६२॥
सकल वात सगली धरा	जांणे सहु एकरजी करसी ।
दक्षिण री लीधी धरा	हिन्दू धरम किण विधि धरसी ॥
जती जती कोई जोगींद्र	पचपांण व्रत किम पलस्यैं ।
परमेस्वर हूआ प्रतिप	कहै नभ वंछित फलस्यै ॥
टलिस्यै दुष दोहग सवै	निराटन हिन्द व इकरजी ।
हिन्दू में राजा बहु हुस्यै	भगवंत भजौ आलस तजी॥६४॥
शंभू रे बेटे राजारांम	सबलौ नांम दक्षिण सगलै ।
ब्रहांणपुर[3] री वाट चौथी	लगाई लीधी सबलै ॥

बन गया। सं० १७४४ में औरंगजेबने इस पर मुगलोंका सुदृढ़ झंडा गाड़ दिया। यहाँसे हैदरावाद और गोलकुंडेका इतिहास समान ही है।

१. शिवाजीकी मृत्यु तो सं० १७३७ ज्येष्ठ कृष्णा १० को ही हो चुकी थी, तभी तो अकवर शंभाजीके पास गया था। ऐतिहासिक घटनाक्रमका जहाँ तक प्रश्न है, यह उल्लेख वीजापुर गोलकुंडाके पतनके पूर्व आना चाहिये था। इस पद्यमें शंभाजीकी दुर्दशाका जो चित्रण किया है, इसका विवरण पद्य ५९ के टिप्पणमें पूर्व आ चुका है।

२. कवि जयचंदने राजारामको शंभाजीका पुत्र वताया है वह सही नहीं है। राजाराम तो शिवाजीका पुत्र था—शिवाजीकी मृत्युके वाद अष्टप्रधानमें राजारामको ही रायगढ़में राजा घोषित किया था, पर शंभाजीने इन्हें कैदमें डाल दिया था। जव शंभाजीका कत्ल हुआ तदनंतर शिवाजी द्वितीय का राज्याभिषेक संपन्न होनेपर राजारामको स्थानापन्न राजा वनाया था। इन्हें समाप्त करनेके लिए औरंगजेवने वहुत प्रयत्न किये पर विफल रहा। इनका अष्टप्रधान-मंडल चतुर और कुटिल था। राजा भी पिताके समान वीर और पराक्रमी था। इसने धामुनि (जिला सागर) और मांड़वगढ़ तक लूट मचाकर मुगलोंको तंग किया था। इसी श्रमसे सं० १७५७ में वह समाप्त हो गया।

३. वुरहानपुर ही क्यों वरावर पर राजारामने अधिपत्य जमा रखा था।

सईकी

पातिसाहि फिरै पापती   लडै विहुं सैनाक लीया ।
नकटी रांणी रे देश   तिहां तिणें फेरी—लीया ॥
चंदी चदेरी जोईयौ   सुक्ख न पायौ.......... ।
..........दक्षिण   दल में धर्यौ अकल उपाई ए
छती ॥६५॥

पतिसाह..........सहु   दक्षिण सेना.......... ।
न मिलै नाजै[2] तिण वेर देह....   ....देणा ।
बारै रूपीये आटो सेर   तेर रूपीये वाटको पाणी ।
...........मूल मूआ   घणां विण दाणें पाणो ॥
पतिसाह औरंग रो जबरौ   कटक तिहां पपीयो घणों ॥६६॥
चैंताले नहीं मेह   रूपीये एक सेर सोले ।
मुंहगो पांन अति निपट   ढोर पर्या सगलै ढोलै ॥
हुंद अने दुकाल नींकली   न सकै घर.....बारी ।
करै न विणज व्यापार   मांगे लोक हुई भिप्यारी ॥
जतीयां रै चेला जड्या   मन मानीता निरतै मोलरा ।
पर.......रै मेलव्या   आदर्या कुमी आलिरा ॥६७॥

---

१. यह रानी कहां की थी पता नहीं । डा० दशरथ शर्मा द्वारा संपादित 'पंवार वंश दर्पण' में प्रदत्त एक वंशावली में नकटी रानीका उल्लेख इस प्रकार आया है—

'कलसांहरा वंस में महीपतसाह हुवो जिणरी राण चहुआण करणाती । जिण पातसाहांरा उमराव नीजावतखां पहाड़ां माथै आयौ, तुरकांरा नाक काटिया जिणासूं नकटी राणी कहाणीं ।

२. "सन् १६८५ ई० में जब बीजापुरका घेरा डालनेवाली सेनाको दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ा, और जब औरंगजेबके आदेशको ठुकराकर शाहजादे आजमने बीजापुरका घेरा न उठानेका निश्चय किया, तब आजमकी सहायताके लिए औरंगज़ेबने गाज़ीउद्दीनखां बहादुरको बहुत सा धान्य और रुपया लेकर भेजा ।"

—महाराजकुमार डा० रघुवीर सिंह रतलामका प्रथम राज्य, पृष्ठ २७३-७४ ।

त्रयालीसैं मेहतयार धांन पिण नींपनौ जोरें ।
चौमालीसै मास च्यार धांन मेह हुआ सजोरें ॥
पैंतालीसै मेह बहुत मोठ मण बारै विकीया ।
मण नव हुई बाजरी मण तंबाकू लेई रुपीया ॥
तिजारो फल दोढ़ मण बीजापुर री भांग मण हुई ।
नव सेर गिरि तोल तीसरी च्रिणी पांड़ सेर दस जई ॥६८॥

छयालीसै बतांध............पिण.......हूआ सजोरा ।
नीपना सगला देस पुसी थका बोलावीया ॥
..........हस जोर एक हुओ आसाढे मांहे ।
सावणें न हुओ सरस हूओ.... माहै ॥
वेकरीयो भुरट ते तुंबा बहु हुआ ते पाइ वरस काढीया ।
..........वरस रो धांन बहु हुतौ तिण करि रिणों.... ॥६९॥
...................श्रावण भाद्रवै वलि आसू ।
च्यारै मण हूआ........ ऐसासू ।
धांन धरती में मावै नहीं पाड़ पणी धांन सुं दाटी ।
कोठी कोठा बहु कीया लेई लीद नें माटी ॥
अडसठी पाइली अन्न हुआ बाजरी रूपीयै एक री ।
तोटै पड्या वाणीया मुंहगै धांन हुई वेकरी ॥७०॥
उगणपचासें अडसठि पाइली आसो मांहे ।
सावणें मेह सपर सुंहगौ धांन लीधौ साहै ॥
भाद्रवै हुऔ सबल मेह हूआ बीज बलीया सारा ।
फूटा कोठा सबल धांन सहु वहै अतारा ॥
पांणी पडीया पाड़ में धांन सड़ी गया साहरा ।
वेसी गया ऊभा पेत वलि धांन गमाया ठाहरा ॥७१॥
चौमासे मांहि चतुर दक्षिणी रौ माल आण्यौ ।
दार तीन सें सबली नालि बंदूषां वलि लड़ाई सरू ।

आणंद अनुप……पांचै सांमठां मिलीनें ।
नाज़र आणंदराम……केडे दफ़्तरी करमसी ॥
कर्मलसी पंदो……जैचंद इम वदै रामपूरीया कूकड़ा ।७२।
……पची से चारु ।
बीकानेर वड़ नगर…… ……धरै ।
…… चौतरै रघुनाथ जाचौ ।
छापदार जगरूप…… ……धरै ॥
कोठारी नेंणसी साह बहु वरतै आणंद राज में ।

---

१. आनंदराम नाजरने आत्मवृत्त स्व-रचित गीताके अनुवादमें इस प्रकार दिया है ।

मुथिर राज विक्रमनगर नृपमनि नृपति अनूप ।
थिर थाप्यो परधांन यह राज सभा को रूप ॥
नाजर आनंदरांम के यह उपज्यों चित चाय ।
गीता की टीका करौं सुनि श्रीधर के भाव ।

महाराजा अनूपसिंहजी और सीसोदणी के ये परम विश्वस्त कर्मचारी थे ।

२. यह बीकानेर राज्य के कर्मचारी थे । इनका विशेष विवरण नहीं मिल सका है ।

३. यह भी बीकानेर राज्य के प्रभावशाली कर्मचारी ही जान पड़ते हैं ।

४. यह मान रामपुरीया होना चाहिये ।

५. माहेश्वरियों का एक गोत्र ।,

६. *यह व्यक्ति रघुनाथ मूंदरा ही जान पड़ता है जो बीकानेर राज्यका कोषाधिकारी था । इसका उल्लेख पद्य ९४ में भी आया है ।*

७. किसी भी राज्यमें छापदारका पद उच्च होता है । अतः प्रतीत होता है यह बीकानेर राज्यके छापदार रहे हों । जसरूपका नाम तो इतिहासमें आता है, पर यह तो जगरूप है । नहीं कहा जा सकता कि ये दोनों एक ही व्यक्ति हैं या भिन्न ?

८. यह बीकानेरवासी जैनधर्मानुयायी सज्जन थे । बीकानेर के विज्ञप्ति पत्रमें इनका नामोल्लेख मिलता है । इनके पुत्र जयतसी के लिए कवि लालचंद ने "लीलावती" का भाषान्तर सं० १७३६ आषाढ़ कृष्णा ५ बुधवारको

जयचंद जगत सारा सुपी करमसी दफतरी घणुं काज में ।७३।
पंचासै सहु पंच रै आगलचि कामेतियां रै दाइ जाई ।
ते देपि चड़े द्वेष चि सहु लोकां रो चलीयौ ।
दफतरी करमसी तिणवार आणंद नाज़र सुं मिलीयो ।
आछा वस्त्र उतारि लै रूपीयौ पच्चीस माथै करे ।
आढौ दुसोरौ ऊतारीयौ एहवा लक्खण करै इण परै।७४।
मुलताणें सेह न हूओ अन्न दुकाल कहाणो ।
नव टके माणस मोल लीजै तिहां एम ही विहाणों ।।
लाभ रे अरथे लोभीए वस्तु वानां सुं भरि ऊंठीया ।
जे जेहनें धके चढ्या लाहौर दिसा साथ लूंटीया ।
वलोचि मुलताणें दिसी लूंटीया दाम निरसा पड्या ।
पचासैक रथ रे वरस में मांहोमाहै माणस अड़वड्या ।।७५।।
गुणवंत सेती गोठि वरस गुणपंचासै वारू ।
विद्या विविध विचार शास्त्र सीपै मति सारू ।
पचासै परवीण पंडित– जन पढै पढावै ।

किया था जिसकी अन्त्य प्रशस्ति में कोठारी नेणसी का इस प्रकार उल्लेख आया है—

राजै तहाँ राजा वडौ श्रीअनूपसिंह भूप ।
राष्ट्रवंश नृप करण सुत सुंदर रूप अनूप ।। १८ ।।
× × ×
अधिकारी तसु अधिक मति कोठारी कुलभांण ।
नाम भलो श्री नेणसी गंजै अरि गज माण । २०
नृप मन शुद्ध मया करै वहुत वधारै मान ।
हाकम हुजदारां सिरै प्रसिद्ध गिणैं परधांन ।। २१ ।।

यह भी एक संयोग की ही बात है कि इसके प्रतिलिपिकार प्रस्तुत सईकी के प्रणेता जयविमल-जयचंद ही हैं जिनने सं० १७७० श्रा० व० १३ गुरू को वीलावास में लिखी । संभवतः वहीं इनका देहावसान हो गया ।

ललित नाज़र की खुराफ़ात से सीसोदणी की आज्ञासे अन्य कर्मचारियोंके साथ नेणसी को भी मरवा दिया था जिसका विवरण आ चुका है ।

आगम अरथ अपार भेद लहि लिपै लिपावै ॥
अकल विद्या गुण आगला भलै आचारैं भावसुं।
जैचंद जैत सारी जुगति दांन धर्म वड दाव सुं ॥७६॥
अनोपसिंह अधिक्क वपत बहु वीकानेरें।
ति सवल राजांन न्याय निज ग्रुपे विचारे ॥
फलवद्धी भटनेर पूनीयासार सवल तेऊ पठायौ।
पाप्यां पाचं पुत्र सर सवल तेउ पठायौ ॥
पतिसाह री पूरी मया जोर नहीं को जवि तदी।
कवि जैचंद आंणंद करौ फलै वपत निज पुन्नरौ ॥७७॥
इक तनें एक जोर आपणों जगायौ।
आधे चैत मण आध पायली वीस न पायौ।
करमसी दी कुमति नाजर कोटवाल ति वारे।
वैरां ओडै विसोड़ देतां दांन निवारैं ॥
पहिरो ओढो कोई मतां व्याज वणिज वरजीया।
लोक कुमतिइं लागीया न करै कोई""तरजीया ॥७८॥
इकावनें आसाढ़ तिहां पाइली जान अठारे।
एक वरषा अति गाढ़ करसणी पेत वलद हंकारे ॥
चौमासै सावण सपर धांन वांस जितरौ वधीयौ।
पछै न हूओ मेह कूडौ हूओ जसकनाथ रो कथीयौ ॥
पाइली इग्यारे हुई....... पछै पांच च्यार तांई उतरी।
गाढ़ बदल नहीं गिणतीयें लोक गया देश छांडी करी ॥७९॥
आय फलस्यै आस ते लोक सहु मेह आसि।
टाकुरे मेल्हो टिक्क धरती तजी गया परदेसें ॥
संन्यासी नें साहिया भगतां नें पकडी वाधा।
देषी सारां रे धांन पोहा मांहिथी लूंटी पाधा।
लाज मांद लोके तजी मागतां भीप पडीया फिर्‌या।

वाणीये वणि कुल वाट तजि नासत्त निर्धन हुई नीसर्या ॥८०॥
ब्राह्मण नहीं विगती रीति राजवीए राली ।
साहा सें नहीं सगती हूआ रांका ज्युं हाली ॥
थांमे धरा कहो कवण कोइ नही एसो कलि में ।
मिट्यौ दान नो मार्ग सर्व जग हूआ छलमें ॥
थलीए इसो इक्कावनों गुजरातिइं सत्यासीयो[1] ।
हूओ सारिषो लोक में पाणी न लाभे छासीयो ॥८१॥
विटल थया वाणीया कार निज कल री थोपी ।
गुरुदेव नें नवि गिणें कुवचन कहै भूंडौ कोपी ॥
विहरावण री वात जांणे नही कोइ जन मैं ।
दरसणी पासे द्रव्य पुषी हुवै लेई मन में ॥
चोंचां करी नें चारटा भाडा मांगे निलज हुई ।
इक्कांवनें एहवी लोकांनी वुद्धि किम थई ॥८२॥
रूपो मासा पच्चीस सोनो तीन पावले मासो ।
कांसी पईसा असी वेचतां फिरै विपासो ॥
पछेवडी लोवडी सात कांबल हीरागल आध रूपीये ।
रूपीये एक में भेंट इग्यारे गाइ रूपीये अढीये ॥
तरवार कटारी रो मोल नहीं लोह में लेवे तोलनें ।
वालक विक्या पेटां सहै गाडी न लै कोई मालनें ॥८३॥
ऊंट हुआ अधमोल गाइ नहीं गिणती माहैं ।
छाली जेंम छछूकी सत तजि काढी साहै ॥
साजण सगे नहो सुक्ख द्रव्य कोई उधारो न देवे ।

---

१. शाहजहांके सिंहासनारूढ़ होनेके थोड़े समय वाद सं० १६८७ में भयंकर अकाल पड़ा था जिसकी ध्वनि १७ वीं शती मध्य काल तक गूंजती रही और एक कहावत वन गई। भारतमें इस प्रकारका दुष्कालका ही पड़ा होगा। इसकी भयंकरताका आभास कविवर समयसुंदर रचित "सत्यासिया दुष्काल छत्तीसी" "विशेपशतक" एवम् "चंपक चौपाई" से मिलता है।

चाकरै केई चोर जिम तिम धन जननां लवे ॥
लाज हीण लालची भजना द्रव्य तणी भई ।
संवत सतर इकावनें इम निरमल बुद्धि लोक नी
गई ॥८४॥

नींकली गया परदेश रह्या केई भूपा भागा ।
वाणीया रौ धरे वेश निर्धन थका सीदावा लागा ॥
जतीयां रे जड़ी यंत्र हुता ते कीधा हाथे ।
गुण्यो गुणणो अति घणों सहाय हुआ देवगुरु साथे ॥
चेला कीधा चूपसुं जतीये अवसर जोईयौ ।
काढ्यौ दुकाल कूटीनें काठौ लातां सुं पुंदीयौ ॥८५॥
धरती सगली दुकाल नागोर मेड़ते जोधपुर तिणहिक ।
मालवे दषिण मांहि गुजराती धांन भाव इम हीज ॥
माइ बापि तजी मोह बाटी सटे बेच्या बेटा ।
मांटीऐ बाहिर छांडि दीधी तुरकनीं वेटा ॥
धांन विहूणां निबल तिहां मारग में पड़ीया मूआ ।
केई गामा में घींसी नांपीया ए हवाल इकावनें ॥८६॥
मान मेल्हि गया मालवै ते रड़वड़ता भूपा मूआ ।
पटणें गया तियें भऱ्यो पेट तिहां जई सोहला हुआ ॥
हीरेजी साहें धरि हेत दुकाल कढ़ाड़ दमड़ा दीया ।

१. कवि ने हीरजी शाह का विशेष परिचय नहीं दिया है। पर पटना का संकेत करते हुए उनका नाम लिखा है अतः बहुत संभव है कि उस समय पटनें में जो भी राजस्थानी दुर्भिक्ष पीड़ित होकर गया उसे हीरजी साह ने वांछित सहायता दी होगी। सूचित हीरजी शाह जगत्सेठ माणिकचंद के पिता हीरानंद शाह ही होने चाहिएं, क्यों कि यह मारवाड़-नागोर-निवासी थे। सं० १७०९ में ही पटना चले गये थे और सं० १७६८ में इनका देहावसान हुआ। बिहार प्रदेश में इनका व्यापक प्रभाव था। इनकी पटना की कोठी शिल्प सौंदर्य की प्रतीक समझी जाती थी जो गंगा के किनारे पर अवस्थित थी।

धांन धन्न थापीया साहनें सोहिला कीया ॥
वली आया वीकानेर में वावन्ने वीज वावीया ।
मेह हूआ वहुलां देश में पिण न लीधा वीज वलदीया ॥८७॥
वावन्ने तूठा सेह जोर सेती जलधारा ।
तुम्वा हुआ अति घणां हूआ तिहां भुरट[1] अपारा ॥
लोके धारी लाज वले झूंपड़ा तिहां वांधा ।
वीज भात वलद घणां न मिलीया कोइक लीधा ॥
पूरी रली इम वावों राजा हूआ सहु धरि रही ।
साहे सत साहीयो संड़ाण वले हूआ मही ॥८८॥
वावनें पाणी वावीस भाद्रवै आसू माहैं ।
सगले हूऔ सुगाल धांन धण अंग उमाहे ॥
वीकानेर वारे पाइली समीयाणची घणुं सपरी ।
वीज मिल्या वाया नहीं तिका धरती हुई विपरी ॥
कवि जैचंद कहै जांणि करि असुभ ग्रह मिटीया अलग ।
वले आणंद वरत्या सयल पुर सुप संतोष हूआ सयल जग ॥८९॥
तेंपनें तुरत दुकाल धांन मुंहगो हूओ दीठो ।
वावन्नें थलीये मेह नींपनों धांन लागौ मीठौ ॥
वाजरी पाइली तेर गोहूं गुणतीयें वलि गिणीया ।
घृत समीयाणचीयें सात सेर सेर सोले गुड़ गिणीया ॥
फेरी ऊंठ वलि पोठीया धांन परदेशां जई आणीयां ।
गुजरात लोक गया घणां तीयें दुकाल न जाणीयो ॥९०॥

आज भी पटना शहर में इनके स्मारक स्वरूव "हीरानंद शाह की गली" विद्यमान हैं। अपनी जन्मभूमि की जनता को इनने पटना से भी आर्थिक सहायता भिजवाई हो तो आश्चर्य नहीं।

१. भुरट एक प्रकार का खाद्यान्न है जो विशेषकर रेगिस्तान में उत्पन्न होता है जिसकी रोटी स्वादिष्ट बनती है। वीकानेर की ओर इसकी उत्पत्ति अधिक होती है।

चोपनें वलि जोर	दुकाल पडीयो जैसलमेरी ।
बाहड़मेर कोटड़ै ऊंनरकोटै	जाइ लीधा फेरा ॥
सेत्रावै समीयाणची	जोधपुर नागोर तांई ॥
बीकानेर वलि मुलक	रूपीये रे सेर आठ संवाही ॥
आठ पईसा भर अन्न	तिहां लाभै पईसे रोकड़े ।
सोना रूपा सटै ता लिजे	धांन मिलै नहीं दोकड़े ॥९१॥
वावा हद लाड़णूं फतैपुर	कोटा ।
तिहा जई काल्यौ दुकाल चतुरे	फिरि ऊपर चोटा ॥
चैत मास पूनिम सवली	तिहां वावुल वागी ।
बीकानेर वड़ कोटड़ी	जडी रही पोलितै भागी ॥

किमाड़ उघड्या नहीं पित रह्या उत्पात देपी पड्या ।

अति लोक सहु आंणी	कोई होसी अजब गति ॥९२॥
जोर लीधो जोईये[2]	वजोवै पिण वल जांण्यौ ।

---

१. सं० १७५४ चैत्री पूर्णिमा को बीकानेर दुर्ग की बड़ी पोल खंडित होने की सूचना केवल इस-सईकी में ही मिलती है। अन्यत्र इसका संकेत तक नहीं मिलता। कवि ने यह सूचित नहीं किया कि कौन सी पोल के द्वार गिर गये थे, क्योंकि दुर्ग में "कर्णपोल "सूरजपोल" आदि कई द्वार हैं।

२. "जोहियों के लिए प्राचीन लेखों में "यौधेय" शब्द मिलता है। प्राचीन क्षत्रिय राजवंशों में यह बड़ी वीर जाति थी। यौधेय शब्द "युध्" धातु से बना है, जिस का अर्थ लड़ना है। मौर्य राज्य की स्थापना से भी कई शताब्दी पूर्व होनेवाले प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने भी अपने व्याकरण में इस जाति का उल्लेख किया है। इनका मूल निवास स्थान पंजाब था। इन्हीं के नाम से सतलज नदी के दोनों तटों पर का भावलपुर राज्य के निकट का प्रदेश "जोहियावार" कहलाता है। जोहिये राजपूत अबतक पंजाब के हिसार और मांटगोमरी (शाहीवाल) जिलों में पाये जाते हैं। प्राचीन काल में ये लोग सदा स्वतंत्र रहते थे और गण-राज्य की भांति इनके अलग-अलग दलों के मुखिये ही इनके सेनापति और राजा माने जाते थे। महाक्षत्रप रुद्रदामा के गिरनार के लेख से पाया जाता है कि क्षत्रियों में वीर का खिताब धारण करनेवाले यौधेयों को उसने नष्ट किया था। उसके पीछे गुप्तवंशी राजा

[१]लेपेरे लह्यौ घात भाटीयै वली पतवाण्यौ ॥
देस विक्कानेर निपट जठा तठा पोसी पावै ।
सरसो कीयौ वासा संत बैठा कुण रहवा पावै ॥
लूकै लोक लूटीयो थका वालै किण आगे वापड़ा ।
रजपूत पोसै मेला हुई रहै नहीं धरै लाकड़ा ॥
चोतरे चावो चतुर आणंद नाज़र अधिकारी ।

समुद्रगुप्त ने इनको अपने अधीन किया। पंजाव से दक्षिण में बढ़ते हुए ये लोग राजपूताने में भी पहुंच गये थे। ये लोग स्वामिकार्तिक के उपासक थे, इसीलिए इनके जो सिक्के मिलते हैं। उनमें एक तरफ़ इनके सेनापति का नाम तथा दूसरी तरफ़ छः मुखवाली कार्तिकस्वामी की मूर्त्ति है। भरतपुर राज्य के वयाना नगर के पास विजयगढ़ के. किले से वि० सं० की छठी शताव्दी के आसपास की लिपि में इनका एक टूटा हुआ लेख मिला है। वर्तमान वीकानेर राज्य के कुछ भाग में भी पहले जोहियों का निवास था और एक लड़ाई में मारवाड़ का राठौड़ राय वीरम सलखावत (जो राव चूंडा का पिता था) इन जोहियों के हाथ से मारा गया था। राव वीका-द्वारा वीकानेर राज्य स्थापित होने के पीछे वीकानेर के राजाओं से जोहियों ने कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं, जिनका उल्लेख यथाप्रसंग (वीकानेर राज्य के इतिहास में) किया जायगा। मुसलमानों का भारत में आक्रमण पंजाव के मार्ग से ही हुआ था। उस समय उन्होंने वहाँ के निवासियों को वल-पूर्वक मुसलमान वना लिया। तव जोहियों ने भी अपना सामूहिक वल टूट जाने व मुसलमानों के अत्याचारों से तंग होकर इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। अव वीकानेर राज्य में जोहिये राजपूत नहीं रहे केवल मुसलमान ही हैं।"

—स्व० गौ० ही० ओझा—वीकानेर राज्य का इतिहास, पृष्ठ २३-३

१. जोहियोंसे वीकानेर नरेशों की लड़ाइयाँ होती ही रही हैं। लखेरा या लवेरा इन का केन्द्र था। परन्तु जिस संवतके घटनाक्रममें कविने वताया है कि "जोइयोंने अवसर देखकर वात-युद्ध छेड़ा और भाटियोंने भी राठौड़ोंका वल परीक्षण किया। समझमें नहीं आया। अनूपसिंहके जीवन कालमें इस प्रकार की घटना घटी अवश्य थी, पर वह तो सं० १७३५-३६ लगभग की है। इसके वाद भी भाटी और जोइयों से संघर्ष तो चलता ही रहा पर वह सूचित समय की सीमा में नहीं आता।

मुंधड़ौ वली रुघनाथ   वात भली करतौ सारी ॥
जोईया रै देपै जोर हैरान सवि रजपूत हुआ ।
नवहर भूकरको मारीयौ तिहां रजपूत घणां वीका मूआ ॥
पड़गसिंह काम आयौ सुण्यौ अनोपसिंह रै कहिवै करी ॥
रुघनाथ भूंहड़वाले मारीयौ बांधी कुत्ता रै गलै धरी ॥९४॥
जलधर वूठा जोर भींती पडी कोटनी मांहिली ।
पड्या काचना महल   बुराई जाणी पहिली ॥
इसे अवसरें राजा अनोपसिंह दक्षिण में दिवंगत हूऔ ।
नांन्हां कुंवर निपट देपी देशनें दीयौ दूऔ ॥
दांम दिया जिम तिम करी अजमेर जोधपुर अति ।
पातसाह रै हुंता पापती तिकै तुरक जोर कीधी तुरत ॥९५॥
पातसाहें बोलावीयो   दुरंगदासें धरती मारी ।
नारनौल महिम्म मालपुरौ मारीयौ दोड़ वारी ॥
मालवै अहमद देश मेवाड़ में सारै फिरियौ ।
जैतारण सोझित सारौ माल लेई घिरियौ ॥
भीमरलाई महेवा तणी तिण गामें आवी रह्यौ ।

१. यह अमरसिंहके पिता खड्गसेन प्रतीत होता है जिनकी सलाहसे मुकुंदराय ने भाटियों पर आक्रमण किया था ।

२. यह दुर्गादास का निवास स्थान था । महामहोपाध्याय श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ, कृत "मारवाड़का इतिहास" पृष्ठ २८३ लिखा है कि महाराज अजितसिंह दुर्गादाससे विना परामर्श किये ही अजमेर की ओर चले गये थे और इधर सिवाणा हाथसे निकल जानेके कारण उदासीन होकर अपने गांव भीमरलाई चला आया था । सं० १७५० में यहीं पर महाराज अजितसिंह इनसे मिलने आये थे । वह चाहते थे कि दुर्गादासको साथ ले जांय, पर विफल रहे । यह बात केवल ख्यातोंमें ही लिखी है । अजितोदय काव्य एवं राजरूपकमें अनुल्लिखित है । दुर्गादास भीमरलाई आकर रहा था इसकी पुष्टि इस सईकीसे भी होती है ॥ मिलन और निवासके संवत् जो सईकीकारने दिये हैं वे अवश्य सही नहीं हैं । स्मरणीय है कि सं० १७५१ में सरदारोंके समझानें पर दुर्गादास महाराज की सेवामें गया ।

वोलोत्तरै में पेमकरण[1] वलि मिलि सगसे सोभाग लह्यौ ॥९६॥
दे कुशीप दुरंगदास चोरटा फिरै चोरी करता ।
वीकानेर नागोर विचि घेरी ल्यै सांढ्यां ऊंठ थिरता ॥
मारै मिलै मारगैं लोकानैं हाथ देंपपडी ।
तुरकां कन्हैं जयमाल तेहने ल्यैं ऊंधा पाडी ॥
औरंगज़ेवें इस सुणी दुरंगदास नें तेड़ावीयौ[2] ।
पटा देऊं फुरमांण तव अपणां कटक ले जोधपुर आवीयौ ॥९७॥
पछै गयौ पतिसाह पासि धरती राजी हुई दीधी ।
वरस वे घरे वोल अरज रहिवारी दुरगें कीधी ॥
वले आइ मारुवाडि जालोर साचौर घिराहे ।
समीयाणची पुहकरण फलवधी सेत्रावो मेड़तौ वदिं ॥
चौरासी मेड़तियां री जांणि करि अजमेर तांई आंपणी ।
चाकरी साहिज़ादा आजिम् आपसुं फुरमायौ पाटण[3] तणी ।९८।

---

१. खेमकरण दुर्गादास का भाई था ।
२. सईकीके ९६ पद्यमें भी उल्लेख है कि वादशाहने दुर्गादासको अपने पास वुलाया था, पर इसका कारण कुछ भी नहीं वताया । मारवाड़के इतिहास पृष्ठ १८४-५ से ज्ञात होता है कि वादशाह को अपने पोता-पोती की चिंता सता रही थी जो राठौड़ोंके संरक्षण में थे । सं० १७५२ में शुज़ाअतखां द्वारा दुर्गादासको प्रलोभन भी दिया गया था पर उन दिनों की स्थितिको ध्यानमें रखते हुए दुर्गादासने स्वीकार नहीं किया । इसी वर्ष कुछ दिन वाद सूचित संधि को शर्तें तय कीं और वादशाहके पास अकवर की पुत्रीको भिजवा दिया तथा वह स्वयं भी दक्षिण जाकर पोते को सौंप आया । इसके पुरस्कार स्वरूप मेड़ता और अनंतर धंधूकाके परगनें जागीर में मिले । "मआसिरुलउमरा" में इस घटना का सं० १७५५ में समावेश किया है, शाह की ओरसे खिलअत आदि भेंटोंका भी सूचन है । दुर्गादासके कथनसे ही सं० १७५६ में महाराज अजितसिंहको जालौर और सांचौरका शासन वादशाह द्वारा सौंपा गया । सईकीकारने कुछ विस्तृत भू-प्रदेशका उल्लेख किया है ।
३. संवत १७६० में दुर्गादासको अनहिलपुर पाटण (उत्तर गुजरात) का फ़ौजदार वनाया । उन दिनों गुजरातका सूवेदार साहज़ादा मुहम्मद आज़म

सुरुपसिंह कुंवर सुरूप पचावनें पाटि थाप्यौ ॥
बोलायौ पातसाहें भूप अरज कीयां देश सारौ आप्यौ ॥
कामेती दफतरी करमसी मुंहतौ फतेचंद माहें ।
रामपुरीया रोकीया सबल हुता तियानै साहैं ॥
सुषमल षजानची सरस अति दांण षजानौं समप्पीयौ ।
सुंजांणसिंह[२] त्रिहुं भाइनें काढीया[३] काम घणूं भूंडो कीयौ ॥९९॥

था। "हिस्ट्री ओफ़ ओरंगजेब" भाग ५ से तो यही फलित होता है कि दुर्गादासको समाप्त करनेका यह व्यवस्थित षड़यंत्र मात्र था, उसे संदेह हो जाने पर वह वहांके तंबू-डेरा जलाकर वापस मारवाड़ आ गया। इस भावको व्यक्त करनेवाला एक पद्य कविने स्वहस्तलिखित प्रतिमें इस प्रकार दिया है—

आजिम सुं अमरस दुरंगदास नीकल्यौ आई।
साथ सुं करि संग्राम सामुद्रडी अकल उपाई॥
अजितसिंह अवसांण जालोर—जोधपुर आयो।
सोझित देपै सहर पाछौ वली जोधपुर पायो॥
ओरंग मूए तुरक पडी अटक रह्यौ राज रजपूत रो।
हिन्दू हद दावो हरषीया आगमच कह्यौ अवधूत रो॥

१. अनूपसिंहकी मृत्यु सं० १७५५ में दक्षिणमें हुई थी और उसी वर्ष स्वरूपसिंह वहीं पर सं० १७५५ में गद्दी नशीन किया गया। इधर बीकानेरमें इनकी माता सीसोदणी विश्वस्त राज-कर्मचारियों द्वारा शासन सूत्र संभाले हुए थीं। ललित नाज़र इनका मुंह लगा चाकर था जिसकी खुराफातसे कोठारी नेणसी, मान रामपुरीया आदि राजभक्तोंको मौतके घाट उतारा गया था। ऐसा प्रतीत होता है उन दिनों राज कर्मचारियों में दो दल थे। स्वरूपसिंहकी मृत्यु शीतलासे सं० १७५७ में हुई। इनका अधिक समय दक्षिणमें शाही सेवामें बीता। वह थे बालक ही।

२. यह अनूपसिंहके पुत्र थे। स्वरूपसिंहके बाल्यावस्थामें ही गुजर जानेसे सुजानसिंह सं० १७५७ में सिंहासनारूढ़ हुआ। बादशाहके बुलवानेपर वह अपने कर्मचारियोंके साथ दक्षिण गया जहां दसवर्ष उसे रहना पड़ा। इनके दक्षिणवास दरम्यान औरंगजेबकी मृत्यु सं० १७६३ में हुई। जिससे अप्रत्याशित अराजकता फैली। मारवाड़में जसवंतसिंहके पुत्र अजितसिंह, जो वर्षोंसे मुगल साम्राज्यके साथ संघर्षरत था, जाफ़रकुलीखांको हटकर जोधपुर पर कब्जा

रह्यौ राज रली रंग अधिक तिहां मास च्यारै ।
वीकानेर रै देश सगली सवल अधिकारै ॥
पचावनें वाहुडचा मेह वहुलां धर मांही ।
नीपनां धांन तिवार सरस धरा सारी संग्राही ॥
तिण वरसै तीड़ी हुई धांन पाई मुंहगां कीया ।
कुंवर काढ्या घातें कटक करी पचावनें रे महि फिरि आवीया
॥ ९९ ॥
च्यारी मास सुप...... कुंवर विहूं भली परें राख्या ।
मनोहरदास फौज़दार रूपैया मां......हजार दाख्या ॥
पैसीकसी रालीया रै सेपा भली वीजो पिण सापो कीयौ ।

किया । मुग़लसिंहासन पर वहादुरशाह वैठ गया । अजितने राज्य विस्तार-की भावनासे वीकानेर पर विफल आक्रमण किया । पुनः सं० १७७३ में सुजाणसिंहको पकड़नेका दुष्प्रयास भी किया, पर वह भी सफल न हो सका । नागौरके शासक वखतसिंहने भी अजितके चरण चिह्नों पर पग वढाये, पर विफल रहा । इनका विशेष परिचय "सुजानसिंह रासो" "में मिलता है । उन दिनों मुगल शासन अति क्षीण हुआ चला जा रहा था, अतः सुजाण-सिंह न तो शाही दरवारमें गया और नाही कभी भेंट आदि भेजनेका कष्ट किया, केवल दिल्लीका संवंध वनाये रखनेके लिये आनंदराम नाज़र और मूंधड़ा जसरूपको भेजा था । इनके कालमें भी जोहियोंने अपना जौहर दिखाना शुरू किया, पर उन्हें दमनके आगे नत मस्तक होना पड़ा । भटनेर, वीकानेर-का हो गया ।

सईकीकारने इस पद्यमें मुंहता फतैचंदका उल्लेख किया है वे सुजाण-सिंहके मुसाहिव वखतावरसिंहके पिता थे । इनका स्वर्गवास सं० १७९२ पौष सुदि १३ मंगलवारको रायसिंहनगरमें हुआ ।

३. यह कृत्य ललित नाज़रका हो रहा होगा । जव सीसोदणीसे नहीं पटने लगी तो सुजाणसिंह और आनंदसिंहकी माताको वहकाना प्रारंभ किया—कहा कि आपको पुत्रोंको भी सीसोदणी मरवाना चाहती है । वह इन दोनोंको लेकर वादशाहके पास जानेको प्रस्थित हुआ, कारणवश लौट आया जैसा कि सईकीके १०० पद्यसे स्पष्ट है ।

चलीया असवार देई कह्यौ ते राजीपइ दीधौ ॥
फत्तैपुर हुई पतिसाह रै पगै जाई लागा पांति सुं।
ब्रहाणपुर रै कर्णपुरें बैठां रहै भलीभांति सुं ॥१०१॥
छपनें छए पंडे सुकाल सूरिज ग्रहण राहूरो रहीयो।
दीहै तारा शुक्र देपी योतिपीयें कहीयो ॥
राति सरीपो दीहें रह्यौ चंद्रमा दीठौ सगले जावोणे।
मन में राख्यौ बीह भूप च्यार सूआ जांणो ॥
सीसोद्यां रांणो जैसिंघ[1] वलि सुरुपसिंघ[2] बीकानेरीयो।
रामपुरीयो[3] राउ कछेंवाहो वलि ते नहीं किण ही घरीयो ॥१०२॥

---

१. महाराणा जयसिंहका राज्य काल सं० १७३७-५५ है।

२. दृष्टव्य पद्य ९९ का टिप्पण।

३. कविने रामपुराके रावका नामोल्लेख नहीं किया है। वीर विनोद पृष्ठ ९८७ से विदित होता है कि उस समय वहांका शासक गोपालसिंहका पुत्र रत्नसिंह था, जो मुसलमान हो चुका था। बादशाह औरंगजेबने प्रसन्न होकर उनका नाम इस्लामखां रखा था। रामपुरा नाम भी इस्लामपुर कर दिय था। सं० १७६० तक तो वही रामपुराका शासक रहा। जहांदारा-शाहके समय जब रत्नसिंह-मारा गया तब गोपालसिंहने पुनः रामपुरा पर अधिकार कर लिया। रत्नसिंहके मारे जाने पर अमानतखांने नगर को लूंटनेका दुष्प्रयास किया था, पर रत्नसिंहकी विधवाओंनें कुछ रुपये और दो हाथी देकर रामपुराको ध्वंसलीलासे बचा लिया।

गोपालसिंहके अधिकारमें आनेके बाद उदयपुरके महाराणाके प्रधान कायस्थ बिहारीलालने फ़र्रुखसियरसे रामपुराको महाराणाकी जागीरमें लिखवा लिया तदनुसार सेना लेकर उस ओर प्रस्थित हुआ। उस समय गोपालसिंह-ने बुद्धिमानीसे कुछ गाँव देकर विदा किया। परन्तु यौवनोन्मादमे वशीभूत होकर रत्नसिंहके पुत्रों-बदनसिंह और संग्रामसिंहने सेनाके जवानोंसे न केवल छेड़छाड़ ही की, अपितु, उन्हें गाँवसे निकाल बाहिर किया। पुनः सं० १७७४ में महाराणा संग्रामसिंह (राज्य काल सं० १७६७-९०)ने बेगूंके रावत देवीसिंह और कायस्थ बिहारीदासको ससैन्य रामपुरापर भेजा और गोपाल-सिंहको पकड़कर उदयपुर लाये। इनसे महाराणाने अनुकूल इकरारनामा लिखवाया जिसकी प्रतिलिपि "वीर विनोद" पृष्ठ ९५७ पर प्रकाशित है।

छपनें वरसे चैत　　　　　बीकानेर रे देशे ।
राजा सुजांणसिंघ　　　　　कीयौ पतिसाह आदेशें ॥
काढ्या कुंवर नें तेह　　　　मूलगौ वयर संभाली ।
दफतरी करमसी पोसी　　　करि मारीयौ भारी ॥
रामपुरीया पछै मारीया　　　कोठारी नेणसी पिण मारीयौ ।
साह नाठौ······कीया　　　बालक राजा वैसारीयौ ॥१०३॥
सतावनें हूऔ सुकाल　　　मारुवाडी नवकोट मझारी ।
सुजांणसिंह बीकानेरीयौ　　फिरै दक्षिणमें असवारी ॥
राजै रांणें अमरसिंह　　　उदैपुर चीतौड़ कोटे ।

महाराणाने मारवाड़से निष्कासित राठौड़ दुर्गादासको भी व्यवस्थाके लिये रामपुरा भेजा। यही रामपुरा आगे चलकर जयपुरके माधवसिंह (जो महाराणाका भानजा और सवाई जयसिंहका वेटा था) को जागीरमें दिया गया।

स्मरणीय है कि दुर्गादासकी मृत्यु सं० १७७५ मागशीर्ष सुदि ११ को रामपुरामें हुई। शिप्रापर दाह संस्कार संपन्न हुआ। यहाँ प्रति वर्ष मेला लगता है, सांस्कृतिक कार्यक्रम रखे जाते हैं, छत्री वहुत जीर्ण हो जानेसे हिन्दू पंच सभाने सरकारका ध्यान इसके जीर्गोद्धारार्थ आकृष्ट किया है, ज्ञात हुआ है कि राजस्थान और मध्यप्रदेशकी सरकारें संयुक्त रूप से इसके समुद्धारार्थ प्रयत्नशील है, मारवाड़में कहावत है कि

अण घर याही रीत दुरगो सफरां दागियो।

४. सवाई जयसिंहका जन्म सं० १७४५ में हुआ था। जयपुर नगरका सौंदर्य इन्हींकी सूझबूझका परिणाम है। राजस्थानमें यही एक ऐसे राजा थे जिनपर कवियोंने संस्कृत, हिन्दी और स्थानीय भाषाओंमें प्रचुर काव्य लिखें। इनकी दो अज्ञात ऐतिहासिक रचनाएँ और गीत सद्य प्रकाश्यमान "राजस्थानका अज्ञात साहित्य वैभव" में संकलित है।

१. सुजानसिंह, करमसी, मान रामपुरीमा और नेणसी कोठारी आदिके विषयमें पूर्व टिप्पणों में यथा स्थान प्रकाश डाला जा चुका है।

२. महाराणा अमरसिंह अपने पिताकी मृत्युके वाद सं० १७५५ आश्विन शुक्ला ४ वुधवारको गद्दीपर विराजे। इनका समय भी राजनीतिक दृष्टिसे संघर्ष पूर्ण ही रहा। इनके राजतिलकके अवसर पर न तो वादशाहकी ओरसे

जसवंतसिंह जैसलमेर . सवाई जयसिंह आंबेर आटे ॥
इतरी धरती नींपनी राउराणा सगला सुपी ।

खिलग्रत आदि कुछ आया और न समीपवर्ती डूंगरपुर, बांसवाड़ा और देवलियाके तरफ़से ही नज़राणा भेंट किया गया। इनने महाराजा अजितसिंह और आंबेरके जयसिंहको सैनिक सहायता दी थी जिसके परिणाम स्वरूप दोनों ने क्रमशः जोधपुर और आंबेरपर अधिकार किया। औरंगजेबकी मृत्युके बाद शाहज़ादोंमें सत्ताके लिए संघर्ष हुआ था उसमें महाराणा मुअ़ज़्ज़मके पक्षमें थे। उदयपुरके राज-परिवारमें इन्हींसे मदिरापान प्रारंभ हुआ। इनकी यशोगाथा प्रस्तुत करनेवाले संस्कृत और हिन्द काव्य उपलब्ध हैं। सं० १७६७ पौष शुक्ला प्रतिपदाको इनका देहावसान हुआ।

१. जैसलमेरके भाटी जसवंतसिंह, अमरसिंहके ज्येष्ठ पुत्र थे। सं० १७५८ में तख्त नशीन हुए। इन्होंने स्वल्प काल ही राज्य किया। विस्तारकी बात तो दूर रही इसके विपरीत इनके समयमें जैसलमेरकी हानि ही अधिक हुई। बाहड़मेर और फलोधी तो जोधपुरके राठौड़ोंने दबा लिये और पूंगल बीकानेर ने।

स्व० जगदीशसिंह गहलौतने,अपने "राजपूतानेके इतिहास" पृष्ठ ६७८ पर जसवंतसिंहका राज्य काल सं० १७५८-१७०७ दिया है और मृत्यु सं० १७०७ में होना सूचित किया है। और साथ ही परिचयमें यह बताया गया है कि इनने ५ वर्ष राज्य किया, इस अनुपातसे तो जसवंतसिंहका राज्य काल सं० १७६३ में हीं समाप्त हो जाता है। पृष्ठ ६७९ पर बुधसिंहका राज्य काल सं० १७०७ से १७०८ तक बताया है जब कि सं० १७०७ में तो जयसिंहके भानजे सबलसिंहका शासन था। इनके बाद अमरसिंह और जसवंतसिंह क्रमशः शासक हुए। वस्तुतः बुधसिंहका राज्य काल सं० १७६४-१७७८ होना चाहिए जैसा कि आगेके महारावल तेजसिंहके विवरणसे सिद्ध है। तेजसिंहके बाद सवाईसिंह और बाद अखैसिंहका स्थान आता है, जबकि सेवक लक्ष्मीचंद कृत "तवारीख़ जैसलमेर" (सं० १९४८ में प्रकाशित) में बुधसिंहके बाद अखैसिंहका नाम शासकके रूपमें आता है जो सं० १७७९ से १८१८ तक शासन सूत्र सँभाले रहा। तेजसिंह (सं० १७७८-७९) और सवाईसिंह (सं० १७८० सावण सुदि १४ को अखैसिंह द्वारा मारा गया) का नाम जैसलमेर तवारीख़में स्वल्पकालिक शासकके रूपमें है।

स्व० गहलौतके इतिहासमें जो स्खलना है उनका नवीन संस्करणमें परिमार्जन हो जाना चाहिए।

जैचंद कहै निज वपत सुं पंन्यें करि सहू में सुपी ॥१०४॥
मालवे हुआ वहु मेह गांम लप वाणुं मांहै ।
मक्की जुआरी उड़द देपी वहु हुआ उछाहैं ॥
घणें पाणीए गल्यो धांन सुंहगा मण दोढ सुप्पारा ।
आसाढें मण एत्र रुल्या लोक मालवैं सारा ॥

डीलें हुआ दूवला नाज विना निर्धन दुपी ।
जैचंद कहै युगति सतावनें साह सहु लोक सु सुपी ॥१०५॥
अठावनें (मैह) अपार मेह नाज वेहुं वहुला ।
झाझि हुई जुआरि मक्की उड़द कीधा मिली ॥
उगणसठे अति नीपनां मेह करि ज्वारि सव लीनी ।
माणी रुपैये दोय राती पड़ी किण ही न लीनी ॥
मक्की रुपैये री आठ मण पत्र माहे थकी गली गई ।
कितरै वाणीयें वेची परी रूपैये मण सो ले गई ॥१०६॥
उगणसठे अति उत्पात वघेरो होइ वालकनें उपाड़े ।
कोई वाजी वचेल कोई नान्ही वालिका छिपाडैं ॥
वृक्षे मकई बीज लागा ते दीठा लोके
माणसां नें पकडी ले जाई इम सीदावै सगलै थोके ॥
उजेणी दिसी उमट उठ्यौ दपिण थी आई घोडीयां ।
मांडव तांई धरा मारी करि नरवदा नदी ऊतरी दौडीया ॥१०७

१. यह सर्वमान्य तथ्य है कि औरंगज़ेबकी कट्टर धर्मान्धताके कारण हिन्दुओंके हृदयमें विद्रोहाग्नि धधक रही थी, उनके जीवनके अंतिम दिनोंमें मराठा पर्याप्त सशक्त हो चुके थे और जहाँ भी वे जाते जनता उनका स्वागत ही करती थी। मुगल सत्ताका आतंक क्षीण हुआ जा रहा था, मुगल परिवार सत्ताके लिये आपसी संघर्षपर तुला था जिसका परिणाम औरंजेवकी मृत्युके वाद सम्मुख आ गया। विजयेच्छु मराठा सैनिक नरवदा लाँध चुके थे। उज्जैन, धामोनी, धार और मांडू तक आनेमें उन्हें संकोच न होता था। सं० १७६४ दरम्यान इनका प्रभाव मालवापर वढ़ने लगा था। सं०

दक्षिण री सारी धरा पड़ गुण देस पेरूं कीयो ।
बुंदेले री[1] बाई रै पासि माल ते पोसी लीधो ॥
ब्रहाणपुर[2] रा पूरहज बिना पोस्या सारा ।
आसेरगढ़[3] अति लूंटि गया औरंगाबाद तांई सारा ॥

१७७५ में मराठा सेनापति ऊदाजी पंवार मालवाके लोगोंसे घास दानेका व्यय भी वसूल करने लगे थे। मालवेका सूबेदार नागर दयावहादुर सं० १७८५ में मारा जा चुका था। सं० १७८६ ये बाजीराव पेशवाने विजित प्रदेशको ग्वालियरके शिंदे इंदौरके होल्कर, धार और दीनों पांतियोंके देवासके पंवारोंको बांटकर सरंजामी जागीदार कायम किये। यद्यपि प्रदेश केवल सेना निर्वाहार्थ ही दिया गया था, पर बादमें अवसरका लाभ उठाकर सेना नायकोंने राज्यविस्तारकी प्रबल भावनाके कारण सुदूरवर्त्ती प्रदेशोंपर अपना आतंक जमा दिया था। दक्षिणसे कटक और घोड़ियां आनेका जो संकेत जयचंदने दिया है, वह मराठा आक्रमणका ही सूचक है।

१. यह बुंदेलेकी बाई कौन थी? पता नहीं, पर कोई शक्ति संपन्न महिला जान पड़ती है। जहाँ तक महिला शासिकाका प्रश्न है दुर्गावतीका ही नाम स्मरण आता है जो चंदेलवंशीय राजा शालिवाहनकी पुत्री और गोंड़ वंशीय राजा दलपतकी पत्नी थीं, इनका समय १७ वीं शताब्दी है। कविका संकेत दुर्गावतीको लक्षित नहीं करता। यह बुंदेलेकी बाई अन्वेषणीय है।

२. इस नगरका अतीत अत्यन्त उज्वल और विविध रोमांचकारी घटनाओंसे परिपूर्ण रहा है। फारूकीवंशीय नासिरखांने इसे सं० १४५७ के लगभग दक्षिणके संत शेख बुरहानुद्दीन या बुरहानशाहके नाम पर बसाया था। दक्षिणका यही एक ऐसा नगर है जो अनेकबार लूटा गया, पर इसकी समृद्धि यथावत् बनी रही। वैदेशिक व्यवसायका यह बहुत बड़ा केंद्र रहा है। मुस्लिम शिल्पके सुंदर प्रतीक आज भी पुरातन गौरवकी स्मृतिको संजोये हुए हैं। मुगल साम्राज्यके अधिपति शाहजहाँ, औरंगजेब आदि सम्राट् कई दिन यहाँ रहे हैं। यह एक समय दक्षिणकी राजधानीके गौरवसे मंडित था। संगीत, साहित्य, सन्त और संत परंपराका यहां अद्भुत् समन्वय था। मराठोंने इसे औरंगजेबके समय कई बार लूटा, और चौथ भी वसूली जैसाकि पूर्वपदके टिप्पणमें आ चुका है। कविका संकेत मराठोंकी बाबत ही है।

३. यह फारूकी वंशका प्रमुख दुर्ग रहा है जिसका निर्माण आसा नामक अहीर

पगै करि घाट ऊतऱ्या नदीमें पिण मारग दीधौ ।
राह रोकयां सारा थरकया रह्या दक्षिणीये हाथ दिय्याडि
नांम कीणो ॥१०८॥
साठै सत छंडीयो दक्षिण धरा सारी नारी ।
लूख्या पोस्या लोक सवि नागा भूपा नर नें नारी ॥
मेह हूआ धरा वहुत ऊंभा करिवा न दीया ।
पोसी पाधों नाज क्युं करि वे ऊगरे जीया ॥
पेट सटै सवि मनुष्य हूआ गलीगली में रडवड्या ।
दुकाल न पड़तौ दक्षिणें तेही गर पोटा पड्या ॥१०९॥
अजितसिंह जालौर वेठो माल धरती रो पावै ।

ने १५ वीं शताब्दी में करवाया था, कहा जाता है कि हिन्दुओं द्वारा वनवाया यही दुर्ग सुदृढ़ है । आसामाताका स्थान भी वहां पर विद्यमान है। एक युग था जव कहा जाता था कि जिसके अधिकारमें असीरगढ़ है, वही दक्षिणका शासक हो सकता है। ऐसे ख्यातनामा किलेको लूंटना मराठोंके लिए गौरवकी वात थी ।

१. सं० १७५६ में औरंगजेवने कुछ परगनोंके साथ सत्यपुर-साचौर और जालौर अजितसिंहको सोंपी थी जिसकी पुष्टि "अजितोदय काव्यसे" भी होती है । उन दिनों मुकुंदसिंह चांपावत इनके मुसाहव और भंडारी विठ्ठलदास प्रधान थे । सईकीमें विठ्ठलदासका उल्लेख किया गया है। औरंगजेवने ऊपरी मनसे अजितको जागीर तो दी पर वह इसे सुखसे वैठने देना नहीं चाहता था । शाही संकेतसे अजितके प्रतिपर्द्धी नागोरके राव इंद्रसिंहके पुत्र मुहकमसिंह (जिनका जन्म सं० १७१८ में हुआ था) ने चांपावत सरदार मुकुन्दको प्रलोभन देकर अपनी ओर कर लिया और जालोर पर सं० १७६२ में आक्रमण कर अपने अधिकारमें ले लिया । अजितने प्रत्याक्रमण कर पुनः अपना झंडा गाड़ दिया । इस घटनाका उल्लेख स्व० गौ० ही० ओझाने इन शब्दोंमें किया है—

—"वि० सं० १७६२ (ई० स० १७०५) में चांपावत उदयसिंह (लखधीरोत) तथा चांपावत उर्जनसिंह (प्रतापसिंहोतने) मोहकमसिंहसे, जो वादशाह की तरफ़से मेड़तेके थानों पर था, कहलाया कि आप वढ़कर

सिरोही रो सिरदार मूंओ तब राउ दोड़ कहावै ॥
सीरोही मान्यो सहर मेल कीयौ रांणै ।
अजितसिंह मिली नें कहाथी रजत एब लाप ॥
एह पेसकसी अटकल नें देवलीयैं उपरा दाउ करि ।
अमरसिंह राणैं एहवौ साठैमें साथ मिलीनें पाछौ वेसी रह्यौ तेहवो ॥११०॥
दपिणीयें संबाही तेग असी हजार घोडीयां आई ।
नाठौ मांड़व रौ निवाब बीबीयां दशौर पहुँचाई ॥
थिर न रही धार आधौ निवाब उजेण रो नायौ ।

जालोर आवें, हम अजितसिंहको पकड़वा देंगे। जालोर किले पर अधिकार हो गया पर अजितसिंहने अपना शासन स्थापित कर लिया।"

—जोधपुर राज्यका इतिहास पृष्ट २३-४

कविवर जयचंदने अपने गुटकेमें जो स्फुट ऐतिहासिक पद्य लिखे हैं उनमें एक पद्य यह भी है जो उपर्युक्त घटनाकी ओर संकेत करता है—

मुंहकर्मसिंह करि मतौ जोधपुर ल्युं जांणे ।
चढीयौ जाई जालोर अजितसिंह सूं अमरस आंणे ॥
उदयसिंह अरजन्न मेली आंण्यौ कुमर बुलाई ।
तेजसिंह तिण वार अजितसिंह आगे ऊभौ रह्यौ आई ।
भाग्य बले भाद्राजन भणो महाराजा मन भांवीयां ।
विहारीदासे वेग सूं पाछा जालोर पहुँचावीया ॥

सं० १७६३ में औरंगशाहके अवसानके बाद अजितने चैत्र कृष्णा पंचमीको अपनी पैतृक राजधानी जोधपुर पर अधिकार किया।

२. कविने मरनेवाले सरदारका नाम नहीं दिया है। सं० १७६० में इस घटना-का अन्तर्भाव किया है। संभव है कोई प्रभावशाली व्यक्तिका देहोत्सर्ग हुआ हो। तात्कालिक अन्य ऐतिहासिक साधनोंसे इस घटनाका पूर्ण समर्थन नहीं होता। स्व० गौरीशंकर हीराचंद ओझा कृत "सिरोहीके इतिहासमें" केवल इतना ही उल्लेख मिलता है कि सं० १७६२ में तत्रस्थ शासक छत्रशाल-दुर्जनसिंह-दुर्जनशालका अवसान हुआ था। अजितसिंहके साथ ऐसी कोई बात हुई हो, ज्ञात नहीं।

उजेण रा पुरा मारीया सिरुंज सहर लूंटी पायौ ॥
भईया साथें वेठि करि गया परदेश लूटता ।
गाजदीपां दक्षिण थी आवीयौ दक्षिणीया गया अछूटता ॥१११
इकसठे मेह अधिक जेठथी वृठौ जांणों ।
सरस हूऔ सावणें भादवें भर्‍या नदी निवाणों ॥
आसूयें फली आस अधिकी सरवथी नारी सरमाई ।
मकी जुआर उड़द नींपना धांन सुलगाई ॥
जैचंद कहै आणंद करौ चोर-चरड़ नासी गया ॥११२॥
इकसठे आसू पछी मास आठ मेह न हूआ धरती माहें ।
वासठै वाहव्यौ मेह एक वार मारवाड़ उछाहें ॥
आसाढ़ थी मास अढ़ी फिरि मेह पाछो न दीठौ ।

१. एक ही नामके समान पदधारी राम-सामयिक अनेक व्यक्ति होनेसे यह निश्चित करना कठिन हो जाता हैं कि किस घटनाका संबंध किससे है ? गाज़िउद्दीन या गाज़दीखांके विषयमें यह पंक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती हैं । इस नामके अनेक व्यक्ति अठारहवीं शताब्दीमें हुए हैं और लगभग सब उच्च पदासीन ही थे । कविने दक्षिणसे किस गाजदीखांको लक्षित करते हुए सूचित किया है ? उस समयकी ऐतिहासिक साधन-सामग्रीको देखते हुए तो यह अनुमित किया जा सकता है कि यह व्यक्ति गाज़िउद्दीन फ़िरोज़जंग ही होना चाहिए जो औरंगज़ेबका विशेष कृपापात्र था । वह दक्षिणका सूबेदार भी रहा था । वहांके युद्धोंमें इनने वीरता प्रदर्शित की थी । जिसके फल स्वरूप" फ़िरोज़ जंगकी" सम्माननीय उपाधि प्राप्त हुई । हैदराबाद-राजवंशकी नींव इन्हींके पुत्र चीन किलीचखां-निज़ाम उल्मुल्क आसफ़जाह द्वारा पड़ी जिसने बुरहान-पुर और असीरगढ़ पर अपना आधिपत्य क़ायम किया था । "निज़ाम उल्मुल्क" उपाधि व्यक्ति परक थी, पर बादमें उसने कौलिक रूप धारण कर लिया । "अजितोदय काव्यमें" इनका उल्लेख फ़र्रूखसियरको छुड़ानेवाले वीरोंमें आता है, पर हसनअलीखांने इन्हें मार्गमें ही परास्त कर वापस लौटा दिया । (मारवाड़का इतिहास, पृष्ठ ३१४) । राठौड़ वीर सरदार दुर्गादासके द्वारा सं० १७६५ आश्विन कृष्णा २ को मेवाड़के प्रधान बिहारीदास पर समदड़ीसे लिखे पत्रमें इनका उल्लेख है । मआसिरुल उमरासे भी इनका राजनैतिक उच्चत्व झलकता है ।

सहु देशें पड्यौ सोर मेंह विण अन्न लाधी मीठौ ॥
गढा हुआ गांम गांमड़ां घर तजि गाड़ै घर कीया ।
ठाकुर रजपूत लोक छंडी ठिक मालवै भणी उमाहीया ॥११३॥
मेह हूओ भाद्रवा सुदि बीज मालवै गया फिरि पाछा आया ।
वूठौ नहीं किहांई वले वाह्यौ तीए धांन गलाया ॥
मारवाडि पड़ मुंहगौ अन्न लोक मालवै नाठा ।
तिहां सुंहगो सुणी नाज फिरै सगलै मन माठा ॥
केई क्रस्नगढ़ होइ बूंदी कोटे गया ।
सांगानेर अविर नाज···सुंहगो सुणी ॥
दिल्ली ढाके···फिर्ने तेथी पिण दुनी गई घणी ॥११४॥
आसूयें अति सबल अहिमदाबादे तारो ओज़िम ।
दुरंग नें तेड़ाइ चितवीहे कहो वेसो आज़िम ॥

---

१. वि० सं० १७६० (ई० सं० १७०३) में शुजातखांके मरणोपरान्त शाहजादा मुहम्मद आजम गुजरातका सूबेदार बना, उसने काजमके पुत्र जाफ़र-कुलीको जोधपुरका और दुर्गादासको पाटणका फ़ौजदार नियुक्त किया। कुछ दिन बाद बादशाहकी आज्ञासे शाहज़ादे आजमने दुर्गादासको अपने अहमदा-बादके दरबारमें बुलाकर मार डालनेका इरादा किया। परन्तु उसकी जल्द-बाज़ीसे दुर्गादासको संदेह हो गया और इसीसे वह बचकर निकल गया। यद्यपि आज़मकी आज्ञासे सफ़दरखा बाबीने उसका पीछा किया तथापि दुर्गा-दासके पौत्रद्वारा मार्गमें ही रोक लिए जानेसे उसे सफलता नहीं मिली। यहीं-पर दुर्गादासका उक्त पौत्र मारा गया। परन्तु दुर्गादास अपने कुटुम्बियोंके साथ मारवाड़में पहुँच महाराजा अजितसिंहजीके दलमें मिल गया।"

—म०म० श्री विश्वेश्वरनाथजी रेऊ-मारवाड़का इतिहास पृ० २८८

उपर्युक्त घटनाका समर्थन सर यदुनाथ सरकार रचित "हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब" भाग ५, पृष्ठ २८७-८ से भी होता है।

कविराजा श्यामलदासजीने इस घटनाको "वीर विनोद" पृष्ठ ८३३ में इस प्रकार उल्लिखित किया है—

"विक्रमी सं० १७५९ में दुर्गादासको अहमदाबाद ज़िलेमें पाटनकी

वेटो''' तीजो वैर रिणमें रापि-खाडि करि जाते गहीयो ।
वाहड़मेर आयो पाधरौ साहिजादै सौच वीचारीयो ।
दुरंग नें पाटण रापिनें साहिजादो पतिसाह पासि पधारीयो ॥११५॥
सारो हायौ सिकदार वैठो नयो राठौड़ां रौ भाणेज ।
जो......तुरके वोर मारै धरती नैं तिंहिज......॥
राठौड़ रजपूत राह मारै दूर्नों में मासौ......।
......लागीयां पाधरौ तेणे................॥

फ़ौज़दारी मिली। अहमदावादके सूवहदारने जाहज़ादा आजमके इशारेसे दुर्गादासपर फ़ौज भेजी जिसकी खवर वि० सं० १७६२ कार्तिक सुदि १२ को मिली। इस खवर सुनतेही दुर्गादास तो निकल गया लेकिन उसके दो वेटे महकरण और अभयसिह वगैरह मारे गये, दुर्गादासके नाम वादशाहकी तरफ़से तसल्लीका फ़रमान आया।"

जोधपुरकी ख्यात सूचित विवरणकी पुष्टि करती हैं। सच वात तो यह है कि दुर्गादास जैसे स्वामिभक्त वीरसे औरंगज़ेवको सदैव भय वना रहता था, वह कदापि नहीं चाहता था कि दुर्गादास मारवाड़में राठौड़ोंके साथ रहे। उन्हें वह कहीं-न-कहीं सुदूरवर्त्ती प्रदेशमें उलझाये रखना या समाप्त करना चाहता था। दुर्गादासके मारवाड़ पहुँचने पर पुनः राठौड़ोंने उपद्रव मचाना प्रारंभ कर दिया जिसकी संभावना थी।

उक्त घटनाके विषयमें सईकीकार जयचंदका मत कुछ भिन्नत्व लिए हुए हैं। वह लिखता है कि दुर्गादास पाटनसे निकलकर सीधा वाहड़मेर पहुँचा और उसीमें वह यह भी सूचित करता है कि दुर्गादासको पाटण रखकर शाहज़ादा सीधा वादशाहके पास गया।

औरंगज़ेवके अवसानके वाद इस संभवतः इसी घटनाको लक्षित करते हुए कविने एक पद्य लिखा है जो इस प्रकार है—

आजिम सुं अमरस दुरंगदास नींकल्यौ आई ।
साथ सुं करि संग्राम सामुद्रडी अकल उपाई ॥
अजितसिह अवसांण जालौर–जोधपुर आयौ ।
सोझित देषै सहर पाछौ वली जोधपुर आयौ ॥
औरंग मूए तुरक पड़ी अटक रह्यो राज रजपूत रो ।
हीन्दू हद दावी हरखीया आगमच कह्यौ अववूत रो ॥

सईकीका लिखित जो भाग प्राप्त है, यहाँसे विलुप्त है, पर कवि जयचंदने कतिपय पत्र छोड़ कर जो स्फुट पत्र लिखे हैं उनमें ६३-६६ तक का विवरण समाविष्ट है, और ६६ से पुनः जो ३९-५२ तक का अंश है, जिसमें सईकी की समाप्ति की सूचना है। प्रतिकी स्थितिको देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि कवि, समय-समय पर जैसे-जैसे स्फुरणा होती गई, भाव लिपि-बद्ध करता गया। वह अपनी कृतिको व्यवस्थित रूप न दे सका। एक प्रकारसे यह प्रति कवि की दैनंदिनी ही है। सूचित भागों का विवरण जो मिला है वह इस प्रकार है—

सतर तेसठै पड़ मुंहगौ गायां गाड़र सम।
तीसरे तौल मण नाज आसाढ़ पहिले रुपीयै हुऔ इम॥

बीजै आसाढे मेह वूठौ धरती धण सारी।
नीली दांम पांगरी रूपीयै घी आठ सेर भारी॥
तेर टके रुपीये हल लेइनें मकइ जुआरि करसे वावीया।
आधे आसाढे मेह जैचंद कहै नदी नाल पाले पाणी आवीया॥१।

बीजै पपै आसाढ़ सावण भाद्रवा कोरा-सा।
आसू काती आध मगसर पोस जवने मारा॥
मुलक सारै मण आधु माह फागुण गोहूँ चिणां वाया।
जवनें मिटीयौ जोर दपणी दिसोदिसी धाया॥

१. सं० १७६३ फाल्गुन बाद मुगल साम्राज्यकी स्थिति डगमगा रही थी। औरंगजेब मरणके पूर्व इस चिंतामें रत था कि मेरे बाद न जाने मुगल शासनकी क्या हालत होगी? क्योंकि शाहजादोंमें परस्पर मेल-मिलाप नहोके समान था। इधर विजयकामी मराठा दिनानुदिन अपना आतंक जमाते चले जा रहे थे। मुगलोंकी हिन्दू विरोधी नीतिसे भारतीय मानस त्राण पाना चाहता था, औरंगजेबकी संतानमें वह शक्ति और कुनेहता नहीं थी जो नवोदित मराठा सैनिकोंकी समानता कर सके। इसीलिए कविने लिखा है कि यवनोंका जोर-आतंक मिटता आ रहा है।

साहिज़ादा सलक्या लसकर सुणी ऊभा न रह्या इक घडी ।
हिन्दू धरम तेग रजपूत री नाठा तुरक मुसकल पड़ी ॥२॥
चैत मासि चौथे सुण्यौ छत्र ढलीयौ ।
अवनिपति औरंग पतिसाह हुतौ महबलीयौ ॥
हींदूए चांपी हद दक्षिण री घोरीयां धाई ।
मालवे रो मुलक मारि धरा रामपुरें तांई दबाई ॥

कविवर वृंद, जो औरंगज़ेबके दरबारमें रह चुके थे, उनने औरंगज़ेबकी अंतिम वसीयतके विषयमें अपनी एक कृतिमें इस प्रकार प्रकाश डाला हैं—

छप्पय

पातसाह दिल्लीस कोप दक्षिनपर किन्नो ।
वीजापुर किय फते गोलकुंडा गढ़ लिन्नो ॥
सिवा समापत भयौ पकरि संभा कौं मार्‌यौ ।
लीए वहुत गढ़ कोट समझि निज समय विचार्‌यौ ॥
अक्लीया साहि अवरंग कौं आगम मति यह उप्पजीय ।
होय न विरोध यह जांनि कैं करि विवेक यह वात किय ॥ २४॥

पातस्याह वचन

दोहा

आजम कौं ऐसे कह्यौ दिल्लीके सिरताज ।
देस दक्षिन तुमकौं दयौं इहाँ करौ तुम राज ॥ २५॥
आजम औरंगसाह कौं हुकुम कियौ प्रमांन ।
कछू न प्रत्युत्तर दियौ मन मैं धरि अभिमांन ॥ २६॥
वीजापुर की साहिवी भागनगर कौ राज ।
तहाँ कीयौ औरंग तव कांमवकस सिरताज ॥ २७॥
कांमवकस कौं यह कहा कछु जीय समझि हसाव ।
वड़ी मजलस करि पुहचीयो अपनी ठौर सिताव ॥ २८॥
आजम भेजि उजेन कौं हुकुम कियौ पतिसाह ।
छोटी मजल मुंकाम कौं करते चलीयौ राह ॥ २९॥
लै सूवा उजैन कौ आजम कीयौ प्रयांन ।
अवधि पाइ अवरंग के पाछे छूटे प्रांन ॥ ३०॥

नाठा तुरक ठांम-ठांम सुं हाडे ओज़म ने हण्यौ।

भाग नीमके मुलकमें	पातसाह परलोक।	
साजी बाजी असदपां	रापी सापी लोक ॥	३१॥
जाहर करी न असदपां	रापी बात दुराय।	
आजम कौं दुय मजल तैं	लीनौं फेर बुलाय ॥	३२॥
संवत सतरै तैसठै	सन इक्कांवन जास।	
असत गति औरंग ससि	अमा फागुन मास ॥	३३॥
वाका औरंगसाहि कौ	सुनिकैं माजमसाह।	
उत्तर दिस तैं उठि चलै	धरि दिल्लीकी चाह ॥	३४॥

जिस हस्तलिखित गुटकेसे ये पद्य उद्धृत किये हैं उसके आदि और अन्त भाग विलुप्त है।

१. इस वाक्यका सीधा अर्थ है "हाडाने आजमको मारा"। परन्तु कविने मारने वाले हाड़ा सरदारका नाम नहीं दिया। तात्कालिक अकाट्य ऐतिहासिक प्रमाणभूत साधनोंसे पता चलता है कि वह हाड़ा बून्दावती-बूँदीका दुर्जनसिंह ही होना चाहिए जिसे औरंगज़ेबने शाहजादा बहादुरशाहकी सुरक्षाके लिए काबुल भेजा था और औरंगज़ेबके मरणोपरान्त इन्हींके साथ वापस आया। मुहम्मद आजमके विरुद्ध इसने शाह आलमका पक्ष लिया था जिसकी वीरताके फलस्वरूप इन्हें बहादुरशाह-शाह आलम की ओर से पांच हजारी जात मनसब और सवार, नौबत, कई परगनोंके साथ "राव राजा" का पद भी मिला, जैसा कि उदयपुरके महाराणा अमरसिंह दूसरेको सं० १७६४ श्रावण कृष्णा ११ के लिखे पत्रके निम्नांशसे सिद्ध है—

पाँच हजारी पाँच हजार असवार नोवत रावराजाई रो खिताब् बकस्यो जणी रो महि भणो सुख हुवो।"

—वीर विनोद पृष्ट ११०

बूँदीके इतिहासमें बुधसिंहको बहादुरशाहकी सेनाका अधिपति बताने का विफल प्रयास किया है। फ़ारसी तवारिख़ों और कविवर वृंद आदि सम सामयिक व्यक्तियोंद्वारा रचित कीर्तिगाथाओंसे स्पष्ट है कि सैन्य संचालनका पूर्ण दायित्व शाहजादा मुइज़ुद्दीन और अजीमुश्शानके सुदृढ़ कंधोंपर था। जाजउ युद्धके समय तो वह बहादुरशाहके साथ आखेटचर्यामें था। यहाँ प्रसंगवश एक बात सूचितकर देना आवश्यक जान पड़ता है कि बुधसिंहके लिए बहादुरशाहका पक्ष लेना उत्तरीय जीवनमें बहुत महँगा पड़ा, बूँदीसे

हाथ धोना पड़ा, और जीवनका एक दशाव्दीसे अधिक समय अपनी ससुराल वेगूं (मेवाड़) में देवीसिंहके यहाँ व्यतीत करना पड़ा और वेगूंके समीप वावपुरामें सं० १७९६ वैशाख कृष्णा ३ को संसारसे विदा हो गये।

औरंगजेवके मरणोपरान्त शाहजादा मुहम्मद आजम सिंहासन पर बैठा और अपने आपको वादशाह घोषितकर दिल्लीके सिंहासनके लिए दक्षिणसे पूरे सरंजामके साथ उत्तरकी ओर प्रस्थित हुआ जिसे कविवर वृन्दने इन शब्दोंमें उल्लिखित किया है—

हुते अहमदानगरमें आजमशाह हजूर।
तपत रपत पतिसाहकी, लीयौ पजानां पूर ॥ ३५॥
तपत वैठि सिर छत्र धरि गज सिक्का ठहराय।
फेरि दुहाई दक्षिनमें चल्यौ निसांन वजाय ॥ ३६॥
मरदांनां आकल मरद असदपांन रनवीर।
साहिव आलमगीर कौं वडौ अमीर वजीर ॥ ३७॥
पवरदार सव वातमें संग लीयौ सिरताज।
वुधि वल तैं पतिसाहके किते सुधारे काज ॥ ३८॥

चौपाई

पांन वहादर नसतरजंग जुलफकारपां लीनौं संग।
है छ हजारी मनसव जाकौ प्रवल प्रताप दक्षिन मैं ताकौ ॥३९॥
कोप ओप जा पर चढ़ि आवै गढ़ गनींम कौं धूरि मिलावै।
चिंजी फते जोरवर कीनी चिंजावरिकौं दहत दीनी ॥४०
जे गनींम के गाढे कोट ते सव लीए पग्ग की चोट।
कोई गनीम मुहारैं आवैं कै मारै कै ताहि भजावै ॥४१॥

दोहा

मुर्यौ न कवहूँ जंगमैं जुर्यौ जहाँ तहाँ जंग।
जुलफकार सरदार कौं आजम लीनौं संग ॥ ४२॥
दलपति दलपति दूसरौ वूंदेला वलवंड।
दौर्यौ सूवा की मदति पल कीने पंड पंड ॥ ४३॥
रामसिंह हाड़ा हठी सुत किसोर सिरदार।
लोहौं परि परि परि उठ्यौ को जानै कै वार ॥ ४४॥
अमांनुलापां औ हठी चौ हजारी उमराव।
सलेमांनपां सांहसी जानैं जुध के दाव ॥ ४५॥
संगै पांन आलम सुभट भाई मुनिवरपांन।

जंग जुरे न मुरे कहौं	गाढ़े भरे गुमांन ।	॥४६॥
केते मुगल पठांन संग	और दक्षिनो स ज्वान ।	
आजम लीनें समझि कें	करिबे कौं घमसांन ॥	॥४७॥
रिस करि माजम ऊपरें	क्या बांधौं समसेर ।	
सोटे की इक चोट सौं	करौं जंग में जेर ॥	॥४८॥
कहिकें वचन गरूर के	आजम चले अभीत ।	
सांई गरब प्रहार हैं	यह समुझि न अनीत ॥	॥४९॥
दिसिदिसि तें सब साहि सुत,	चले अकबराबाद ।	
अपनी अपनी तरफ रतें	सबैं कहावत जाद ॥	॥५०॥
पूरब दिसि तें प्रथम हीं	साहिब साहि अजीम ।	
आई पहूँचे आगरैं	धरैं भुजा बल भीम ॥	॥५१॥
हुतौ अकबराबाद में	मुकत्यारखां नवाब ।	
मांन भंग ताको कीयौ	तामैं रही न ताब ॥	॥५२॥
साहि बहादरसाहि को	फेरि सहर में आंन ।	
गाढ़े साह अजीम जू	सजे जुध सांमांन ॥	॥५३॥
आजम सुत गुजरात तें	चल्यो आगरौ लेंन ।	
सुन्यौ प्रताप अजीम को	बेठौ जाय उजेन ॥	॥५४॥
आजम कौं आयौ सुन्यौ	लंघि नरवदा सीम ।	
कोपि समोगर जाय कें	डेरा कीये अजीम ॥	॥५५॥
साहिब साहि अजीम तब	रिस करि भौंह चढ़ाय ।	
धरि पौरस ऐसें कह्यौ	बीर तब वचन सुनाय ॥	॥५६॥

शाहज़ादा आजम सं० १७६४ ज्येष्ठ शुक्ला १२ को सपरिवार ग्वालियर पहुँचा, बहादुरशाह नहीं चाहता था कि सत्ताके लिये रणसंग्राम हो। कविवर वृन्दने मुअज़्ज़मके मुखसे आजमको कहलाया कि—

माजम आजम सौं कह्यौ	तुम दक्षिन पतिसाह ।	
बौहुरि लीजो मालवौ	क्यौं करियें गज गाह ॥	॥७१॥
समर विजय संदेह है	समर परें लरि सूर ।	
हार जीत प्रभु हाथ है	मत कीजीयो ग़रूर ॥	॥७२॥

आजम वचन—

ए कायर के कांम हैं	रिस छांडे रस काज ।	
ऐसें कैसें करि सकें	राजा पुहवी राज ॥	॥७३॥

क्षित पूंदै हय पुरन सौं पग्ग ग धार घर धीर ।
वसु पूरन जो वसुवती ताहि भोगवै वीर ॥ ॥७४॥

छप्पय

अब तुम आजमशाह वचन मेरौ सुनि लीजै ।
करि आए पतिसाह कांम सोई किन कीजै ॥
लरे साहि औरंग लरौ तिहि भांति लराई ।
दै है जिसैं षुदाय सोई करि है पतिसाई ॥
मानूं न सुलह कोऊ कही लोह छोह धरि कै लहौ ।
कै चढ़ूं तषत आजम कहै कै तपर्तं विच तन धरौ ॥ ॥७५॥

आज़मका युद्धके लिए दृढ़ निश्चय उपर्युक्त पद्योंसे भलीभांति झलकता है। कवि वृन्दने इस रचनामें जाजउ युद्धका बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है। यद्यपि विशेषवल किशनगढ़ नरेश राजसिंहकी वीरतापर दिया गया है, जो स्वाभाविक भी है, पर फिर भी इतिहासके व्यापक तत्वोंकी रक्षा सफलताके साथ की गई है। जिस प्रकार खिड़िया जगाने धरमतके युद्धमें मरण पानेवाले व्यक्तियोंकी यथाशक्य सूची दी है उसी प्रकार इसमें भी सामान्य सैनिकसे लगाकर विख्यात योद्धाओंके वंशके साथ नामोंका उल्लेख है। कौन-कौन विख्यात योद्धा किन-किनसे लड़े आदि बातोंका विवरण शोधके क्षेत्रमें काम करनेवालोंके लिये उपयोगी है। इस युद्धका वर्णन श्रीकृष्ण कवि आदि अन्य लेखकोंने भी किया है जिनके आधारपर "वीर विनोद" में प्रकाश डाला गया है, पर वहाँ पूरी सूची नहीं है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि बहादुरशाहकी सलाह आज़मने न मानकर नरसंहार पर उतारू हो गया। वह दुर्व्यवहारके कारण अपनी सेनामें भी सर्वप्रिय नहीं था। सरदार भी इनसे प्रसन्न नहीं रहते थे। मुरादके समान उनके मस्तिष्कमें विजय और बादशाह बननेकी कामना हिलोरें ले रहीं थीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि युद्धमें आज़मने वीरताका प्रचुर प्रदर्शन किया, पर भाग्यने इनका साथ नहीं दिया। अपने भतीजे मुईज़्ज़ुद्दीनकी गोलीसे वह मारा गया। वृन्दने इसे इन शब्दोंमें उल्लेख किया है—

घटा कौच कारी मनूं मेघ भारी हुती ठौर दूरैं सुनेरी निहारी।
जुट्यौ है भतीजा तहां जोट काका इतै साहि आजम्म पाका ॥१२४॥

वीर विनोदमें यह भी सूचित किया है कि इन्हें और इनके पुत्रोंको शिकारके समय बहादुरशाहके पुत्रोंने मारा, पर बात सही नहीं है। वृन्द न

दीदारनगस दवायीयो साह आलिम मोजँदीनें सुण्यौ।
जल सहित जारडो ग्रासठैं दीसें विरूओ।
नदीए सूका नीर पणि धरती जोओ कूओ॥
सींचै जव कोई ज्वारि अढी मण रूपीयै एकै।
तौल अठारह तुरत टंक दे ...... सेर घी टकै॥
अहमदे मेह हूओ ज ....राठ रतनसिंह राजमें।
चौंसठे चौमासि मेह हूआ पजूपण तांई॥
इक मेहरी रही ओ५ पाधौ धांन तीडीये किहांई।
मालवै बहु मेह हूआ वले मुलक घोडीयै मार्‌यौ॥
भाद्रवै साढातीन मण पछै नाज दोई मण धार्‌यौ।
सेर बारे घी रुपीयै एकै सपर गुल छात्रीस सेर लह्यौ॥
पातिसाह हूए तोटो पड्यौ रस आयौ जीयां रै रह्यौ।
बेटेवाप नहीं मेल पतिसाह साहिआलममें नहीं बल॥
हींदू दावी हद थोड़ो देपी तुरकां रो दल।
पजूपण पछी मेह न हूओ किहां धांन तीड़ीये पाधो॥
मारवाड़ मेवाड़ हूआ चर जमानों हूओ आधौ।
हैम लंबु संवत्सर हठी तेग नहीं हिन्दू तुरक॥
सारीपा सारी धरा घोरीयै कीया गरक।

केवल समसामयिक ही कवि है, अपितु, उनके पास भी रह चुका था, अतः अधिक विश्वसनीय है। कवि जयचंदने हाड़ाके द्वारा आजमको मारनेकी सूचना दी है, उसमें वजन नहीं प्रतीत होता।

१. यह वेदारवख्त ही ज्ञात होता है जो जाजउ युद्धमें अजीमुश्शानको गोलीसे मारा गया था।

२. बहादुरशाहका अपर नाम है।

३. बहादुरशाहका बेटा मुईजुद्दीन जो मुलतानका सूबेदार था और बापके साथ ही दिल्ली आया था और जाजउ युद्धमें सम्मिलित होकर आजमको मारा था।

चौंसठे[1] चिगथौ चित्त चिंतवी चाल्यौ दक्षिण ।
सेना लीधी साथि राजवट मूलगी रापण ॥
हिन्दू[2] मतौ करि हेक अटकली पाछा सारा आया ।
मिले सवे मेवाड़ वाजा जोधपुरें वजाया ॥
कछवाहा नरुका राठौड़ मिली सैंभर डीडवानौं सांमठा ।
तुरक तोड़ीया तरवारि सुं अणगिणीया मूआ एकठा ॥

---

१. औरंगज़ेवने अपने सामने ही ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि वादमें वंधु-युद्ध की स्थिति खड़ी न हो। यह अनुभवमूलक सत्य है कि जीवनमें जव तक संतोप नहीं होता तव तक संघर्ष समाप्त नहीं होता। लालसाके वशीभूत होकर मानव न जाने क्या-क्या कर वैठता है। इधर वहादुरशाह अपनी राजकीय व्यवस्था जमा ही रहा था कि दक्षिण से संवाद आया कि कांम-वख्शने अपने आपको वादशाह घोपित कर दिया है। वीर विनोदमें सूचित है कि इसपर वादशाहने कामवख्शको सूचित किया कि आपको पिता के द्वारा जो प्रदेश मिला है, मैं उसके अतिरिक्त हैदरावाद भी तुम्हें प्रदान करता हूँ और अफसरों द्वारा भेंट-सौगातें परिपाटीके अनुसार वादशाहको मिलती हैं, वह तुमसे न ली जाया करेंगी। संवादका परिणाम विपरीत ही आया, फलतः वादशाहको विवश होकर दक्षिणकी ओर जाना पड़ा और कांमवख्श युद्धमें घायल होकर मारा गया। वहाँकी राज्य व्यवस्था जुल्फ़िकारखांको सौंपी गई और वहादुरशाह सं० १७६६ वैशाख सुदि २ को दिल्ली रवाना हुआ। वीर विनोदकारका यह कथन समझमें नहीं आया कि हैदरावाद भी कांमवख्शको सौंपा जाता, कारण कि वह तो औरंगज़ेवने ही उन्हें सौंप रखा था जैसा निम्न पद्यसे स्पष्ट है—

> वीजापुरकी साहिवी भागनगर की राज ।
> तहां कियौ औरंग तव कांमवख्श सिरताज ॥२७॥
> संभव है और प्रदेश सौंपने का आश्वासन दिलाया गया हो।

२. वहादुर ससैन्य दक्षिण की ओर प्रस्थित हुआ उस समय नर्मदा नदी तक जयपुराधिपति सवाई जयसिंह और मरुधराधीश अजितसिंह उन्हें पहुँचाने गये थे और वादशाहको विना सूचित किये ही वापस लौटते हुए देवरिया आतिथ्य ग्रहणकर महाराणा अमरसिंह द्वितीयके पास उदयपुर आये। इस भावको स्पष्ट करनेवाला एक पद्य जयचंदने इस प्रकार लिखा है—

जेठ मांहि जैसिंह चाकरी जूनी छोड़ी ।
काची कछवाहे करी मही मूलगीने बहाड़ी ।।
नाठौ नदी लंघाइ पाछा आया मेवाड़ मांहे ।
अजित दुरंग एकठा कछवाहा जैसिंघ ।।
राजसागर तलावें रहचा राठौड़ सगला रातीणा ।
सत्तर पैसठे लेउमें तुरक गया तरजीया ।

अजित और जयसिंह पर शाह मन ही मन बहुत अप्रसन्न था कारण कि अजितसिंहने औरंगजेबके मरते ही जोधपुर पर न केवल अधिकार ही कर लिया था, अपितु, उसने मंदिर तोड़कर मस्जिदें बनवाई थीं उन्हें पुनः अजितने मंदिरोंके रूपमें बदल दिया था, गौ-वध निषेधाज्ञा प्रसारित कर दी थीं और आज़ान देना बंद करवा दिया था। यह सब बादशाहको समुचित प्रतीत नहीं हुआ।

सवाई जयसिंह पर नाराजगीका कारण स्पष्ट ही है वह जाजउ युद्ध में मुहम्मद आज़मकी ओरसे लड़े थे, अतः इनका आंबेर इनके छोटे भाई विजयसिंहको देना चाहते थे जो बहादुरके साथ काबुल गया था। आंबेर खालसा कर उसका शासक सैयद हुसैन अलीखां नियुक्त हुआ था। दोनोंकी समस्या एक ही थी।

जयसिंह और अजितसिंह महाराणा अमरसिंह द्वितीयसे आवश्यक सैनिक सहायता लेकर सांभर पर आधिपत्य कायम करते हुए जोधपुर पहुँचे और पुनः अपना झंडा गाड़ जिसे कविने "वाजा जोधपुरें वजाया" शब्द द्वारा अपना भाव प्रकट किया है। बादशाहको दक्षिणमें जब यह संवाद मिला तो और भी असंतुष्ट हो गया और अमदखांसे अजमेरके सूबेदार पर विस्तारसे पत्र लिखवाया कि दोनोंने उचित नहीं किया। भला तलवारों से रणक्षेत्रको आतंकित करनेवाले कभी ऐसे पत्रकी परवाह भी करते हैं ?

इन दिनों पंजाबमें बंदा बैरागीके नेतृत्वमें सिखोंने घोर उपद्रव मचा रखा था। बादशाहके सम्मुख राजस्थानकी अपेक्षा पंजाबकी समस्या कहीं अधिक जटिल थी। पंजाब जाते हुए वह अजमेर ठहरा तब यह महाराणा अमरसिंह द्वितीयने अपने अभिभावक भिजवाकर दोनों नरेशोंके पक्षमें बादशाहसे समाधान करवा दिया (वीर विनोद)। अपने पिताके समान बहादरशाह अनायास ही नये शत्रु खड़े करना नहीं चाहता था। विवशतावश राजस्थानके महारथियोंसे समझौता कर वह पंजाबकी ओर गया और वहीं लाहौरमें इसकी मृत्यु हुई।

पैंसठे पछाड्या तुरक रामचंद्र[1] अकल इम आंणे ।
पूठें नरुके पाडि मुगलां नें मार्या बांणें ॥
जीतह्मां जैसिंह अजितसिंह मारवाडि री आगल ।
मेवाड़पति मांहि मेली कीयौ मेल मेल्ही कागल ॥
साथ अपणों राष्यौ संभरे रुपीया उगाहै रोकड़ा ।
मीर मुलक माठा पड्या दौंडा गिणिल्ये दोकड़ा ॥
छासठें चिहुं दिसें सजल समौ च्यारै मासै ।
पेंतालीसौ मापरौ माणा अढार जवारि में पासै ॥
राजा रजपूत प्रजा चैन पतिसाह दक्षिण[2] मांहे ।
भंडारी भगवानदास रा चांधीया ग्रांधी बांहे ॥
आसू सुदि सातम आवीया एकणि दिवसैं एकठा ।
चज करि जारें झालीया हूंती पहिडी जठां तठां ॥
अजितसिंह अगंज भूपति राकां मेती भारी ।
भंड़ारी भष भगवान रा सुत वाजारी ॥
वीठल सामीदास गिरधर नारायण च्यारै ।
सत्तर छासठै समै आसू सातमि अविचारै ॥
पूजा करतां पकड्या विजै सवलौत वीद वही ।
करणौत दुरगे रे षेदसुं जगतसिंह सिरिपाव लही ॥४॥
पातिसाह नें भोलाई दुरंग मिलि पाछौ आयौ ।
साते पड़गना सुंपीया भंडारी वीठलदास मन भायौ ॥
वरस दोइरो करी वोल आपसुं अति हिउ महिं ।
भंडारी भगवानदास रा दुरंगदास नें तजी दे राहे ॥

१. रामचंद्र सवाई जयसिंहका बुद्धिमान प्रधान था, जिन दिनों जयसिंह उदयपुर विराज रहे थे उन दिनों सं० १७६५ में रामचंद्र और श्यामसिंह कछवाहाने आवेर पर आक्रमण कर सैयदको निकाल दिया ।

२. उन दिनों वादशाह वहादुरशाह दक्षिणमें था सं० १७६६ में वापस आया ।

सत्तावनें नासी सवे अजितसिंह रे आवीया ।
जालौर थी लीयौ जोधपुर तुरक नाठा दबावीया ॥८॥

३९ से ५२ तकके पद्य यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनके अंतमें कविने सईकी समाप्त सूचित की है। यह भाग सईकी का ही है? कैसे कहा जाय? जब तक इसकी अन्य प्रति उपलब्ध न हो जाय। सईकीमें प्रयुक्त छंद भिन्न है। वर्णन क्रमको देखते हुए सईकी की पूर्णताका अनुभव इन्हीं उद्धृत किये जानेवाले पद्योंसे ही होता है। इन पद्यों को कवि ने ही लिखा है, पर अप्राप्त ३८ अंशमें क्या रहा होगा? नहीं कहा जा सकता है। पद्य इस प्रकार हैं—

च्यार मण हूओ छासठे सतसठ मण आध ।
मण तीन अड़सठ समै मण छ गुणहत्तरे चाध ॥३९॥
अड़सठैं छ मण सोल रो गुणहत्तरे छ लीन ।
सतरैं सैं सत्यरे दोड़ मण इकहत्तरे मण पंच ॥
आगम जैचंद इम कहै नदी मेहनी पंच ॥ ४० ॥
संवत सतर बहुत्तरै रुपैये मण इक नाज ।
त्रिहुंत्तरै हुै च्यार मण मिलै बहुली बाजि ॥ ४१ ॥
संवत सतर चिहुत्तरै हुस्यै मुंहगो धानं ।
पचहत्तरै मण तीन लै छ छहुत्तरै जांण ॥ ४२ ॥
सतहत्तरै मण दोड़ वलि अठहत्तरै मण पाँच ।

---

१. इसके शब्दसे पता चलता है कि सं० १७७० तक तो कविने यथाज्ञात विवरण दिया, पर बादकी फ़र्रुखसियर आदिकी प्रमुख घटनाएँ वर्णित नहीं है जिसका तात्पर्य यही समझा जाना चाहिए कि कविका अवसान हो गया होगा, तभी उसने भविष्यवाणीके रूपमें आगेके केवल अनाजके भाव देकर, सईकी किसी भी प्रकार समाप्त की है। आगमके नामपर सईकी समाप्त करनी थी। इन दिनों कवि अपने प्रिय निवास स्थान या आदेशीके रूपमें सोजतके पास बीलयासमें था।

उगण्यासीये हुवै छ मणों		चौ मण असीयै संच ॥ ४३ ॥
आध मण इक्यासीयै		व्यासीये मण तीन ।
त्रयरसीये मण छ कह्यौ		लेख्यौ कोई प्रवीण ॥ ४४ ॥
दोइ मण चौरासीयै		पच्यासीयै मण पंच ।
एक मणों छयासीयै		मत करिज्यौ कोई संच ॥४५॥
सत्यासीयै कह्यो च्यार मण		अठ्यासीये अति पंच ।
मेह नहीं वरसे पापीयौ		पास्यै नर ठग पंच ॥ ४६ ॥
नाज नव्यासीयै तीन मण		मण छ नेऊअ जांण ।
कह्यौ मण दोइ एकाणूंए		पांच मण वांणूए धांन ॥४७॥
एक मण त्रयाणूंए		चोराणूं मण पंच ।
जोई कहूं छुं शास्त्र थी		राषज्यौ अन्न संच ॥ ४८ ॥
पंचाणूंए पचावसी		वरसा करसी ढील ।
षपसै गायां भैंसड़ी		माणस होसी भील ॥ ४९ ॥
अन्न नहीं पच्याणूंए		छन्नूंए मण तीन ।
छ मणो अठाणूंए		ननाणूंए सुणो नाज ॥ ५० ॥
पांच मणो वाल्यौ प्रगट		करिस्यै नर वहु काज ।
संवत सईके अठारमें		होस्यै छ मणों धांन ॥ ५१ ॥
कहै जैचंद आणंद वहु		लहिस्यै आदर मांन ।

इति अठारमां सईका री सईकी सम्पूर्णा

लिपिकृता कथिता वाचक जयचंद्रेण श्रीरस्तु लेखकस्य ॥

ऐतिहासिक स्फुट कवित्त

अनुसंधानके क्षेत्रमें एक ओर जहाँ शोध प्रधान बृहत्काय ग्रन्थों का महत्त्व है, वहाँ दूसरी ओर स्फुट पद्य भी अनुपेक्षणीय है। कारण कि अन्वेषण का क्षेत्र इतना विशाल और महत्वपूर्ण है कि अति लघुतम रचना का संबंध घटना विशेपसे निकल आने पर उसका वैशिष्ट्य द्विगुणित हो जाता है। कभी-कभी एक पद्य ही कई उलझनों को सुलझा देता है। उदाहरणार्थ दलथंभण का उल्लेख राजस्थान के लगभग सभी इतिहासकारों ने किया है और वह भी विवेचनके साथ, पर अभी तक समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई थीं और संभवतः रहेगी जबतक पुष्ट प्रमाण उपलब्ध न हो जाय, पर कवि ने एक संकेत तो दिया है कि वह कौन था? यद्यपि आवश्यक साधन के अभावमें इस पर पूर्णतया विश्वास करने का मन नहीं होता, पर समाधान की दिशामें एक प्रयास तो है ही।

प्राचीन पद्य संग्रह, हजारों और अन्य इस कोटि के संकलनोंमें इतिहाससे संबद्ध अनेक पद्यात्मक रचनाएं उपलब्ध होती हैं जिन्हें हम प्रायः उपेक्षा की दृष्टिसे देखते हैं। इस प्रकारके संग्रह पुरातन ग्रंथ-ज्ञानागारोंमें प्रचुर परिमाणमें संग्रहीत हैं। उनमें मुगल और हिन्दू राजाओं की कीर्ति गाई है। इनका एक स्वतंत्र संग्रह प्रकाशित होना नितान्त वांछनीय है।

यहाँ पर कतिपय ऐतिहासिक पद्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनका संबंध सईकीमें वर्णित विभिन्न प्रसंगोंसे है। यद्यपि इनके प्रणेता की छाप सर्वत्र दृष्टिगोचर नहीं होती, पर भाषा, शैली, व्यवहृत छंद और विषय साम्यके कारण सहज ही कल्पना

की जा सकती है कि ये सब यति जयचंद द्वारा परिगुम्फित हैं। साथ ही सब पद्य कवि की हस्तलिपिमें ही प्रतिलिपित हैं। घटना प्रधान पद्योंके ऐतिहासिक तथ्य समुचित इतिहास की मानसिक पृष्ठ-भूमि द्वारा ही आत्मसात् किये जा सकते हैं। क्योंकि कवि ने कवितामें संवत् का प्रयोग क्वचित् ही किया है। कल्पना को अवकाश है कि वे पद्य भी कविने सईकीमें समाविष्ट करनेके लिये ही लिखे हों, पर समय न मिल सकने या आयुष्य पूर्ण हो जानेके कारण समय-समय पर लिखते रहने की प्रवृत्ति के वशीभूत होकर भी लिख कर संस्कार न किये जानेसे ये अलग-अलग ही पड़ रहे हों तो क्या आश्चर्य ? सईकी अपने आपमें पूर्ण होते हुए भी व्यवस्थित नहीं हैं। अतः यह आशा करना कि इसकी अन्य प्रति मिलने पर संशोधन संभव है, व्यर्थ ही है।

अभ्यासियोंके लिये ये पद्य उपयोगी हों इसलिये यहाँ उद्-धृत करना समुचित जान पड़ता है—

औरंगज़ेब अण कहीये आयो भारथसिंह[1] अभिमांनी।

१. ये शाहपुराके दौलतसिंह सीसोदिया (राज्य काल सं० १७२१-४२) के चतुर्थ पुत्र थे। १४ वर्षकी आयुमें इनका राज्याभिषेक सं० १७४२ में संपन्न हुआ। सं० १७८६ तक विद्यमान रहे। सिंहासनारूढ़ होनेके २ वर्ष बाद ये औरंगज़ेबके पास दक्षिणमें चले गये थे जहांपर वसंतगढ़का दुर्ग इनने जीता। शाहपुराके यह प्रथम व्यक्ति हैं जिनको बादशाहने प्रसन्न होकर 'राजा' की उपाधि दी।

उद्धृत पद्यमें कवि जयचंदने संकेत दिया है कि वह बादशाहको बिना सूचित किये ही वापस चले आये, उदयपुर महाराणा अमरसिंहकी अवज्ञा करते थे, बनेड़ा पर आक्रमण किया, अमरसिंह महाराणाने शाहपुरा पर चढ़ाईकी आदि आदि। इनमें ऐतिहासिक तथ्य कितना है ? इस पर विशेष विचार करनेकी अपेक्षा इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अमरसिंहके समय

सईकौ

अमरसिंह री आंण न मांनी ॥

उदैपुर चाकरी आदरी उंमराव च्यार तिणि मान्या ।

भीम पोता रै कटक सूं मिल्यौ पंचोली चत्रभुज जाई पुकान्या ॥

वणहेडे देषी विणसाड मेली कटक साहपुरौ मारीयौ ।

राणें अमरसिंह रोस आंणी नैं फिरिं वधणोरे थांणों वैसारीयौ ॥

आप उदैपुर आयौ अपूठौ रामा जोगा रो शिष्य कहाणौ ।

रायचंद लोंका रो रिषि दलथंभेण नांम धरायौ ॥

लाहै आंमेरै रह्यौ चौमासि अरजनसिंह मिलीयौ आई ।

पातिसाह मूऔ देषि

ऐसी कोई चढ़ाई शाहपुरा पर नहीं हुई। संभव है महाराणाके साथ इनका व्यवहार स्वस्थ न रहा हो। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि महाराणाओंकी कृपा शाहपुरावालों पर न थी, कारण कि सं० १७११ में जब चित्तौड़का दुर्ग ढहानेके लिए शाहजहाँ द्वारा सादुल्लाखां आया था उस समय शाहपुराके सुजानसिंह सीसोदिया भी उसके साथ थे और इसीके प्रतिकार स्वरूप राणा राजसिंहने सं० १७१५ में शाहपुरा पर आक्रमण किया था, पर २२०००) हजार रुपये लेकर लौट आया। हाँ फूलिया परगनेको लेकर आपसी चख-चख अवश्य रहा करती थी। राजसिंहके शाहपुरावाले आक्रमणके बाद सं० १७९२ और १८१३ में कारणवश चढ़ाइयां हुईं, पर जो कारण कविने दिया है वह ठीक नहीं जान पड़ता। महाराणा संग्रामसिंहके समयमें सं० १७६८ वैशाख शुक्ला ७ को मेवाती सरदार रणवाजखां के साथ मेवाड़की ओरसे भारतसिंह लड़े थे। हाँ पद्योक्त तथ्य इनके उत्तराधिकारी उम्मेदसिंह पर अंशतः चरितार्थ होते हैं। वह महाराणाकी अवहेलना करता था, इसने बादशाहके सम्मुख फूलियाका मामला पुनः उठाया था। सं० १७९८ को अभयसिंह और महाराणा जयसिंहकी लड़ाईमें उम्मेदसिंह मेवाड़की ओरसे लड़ा था। इनके दो भाई—शेरसिंह और कुशलसिंह—काम आये।

१. राजा महाराजाओंकी वीरत्वमूलक कीर्त्तिगाथा स्वरूप लिखी गई ऐतिहासिक रचनाओंमें 'दलथंभन' उपाधिका व्यवहार दृष्टिगोचर होता है। यह एक ऐसा विरुद था जो सेनाके बढ़ते हुए प्रचंड प्रवाहको रोकनेवाले यौद्धिकको दिया जाता था। इस उपाधिसे विभूषित कई वीर हुए हैं जिनमें जोधपुर नरेश गजसिंह भी एक थे जो जसवंतसिंह राठौड़के पिता थे। सं० १६७८ में बादशाह द्वारा इन्हें यह सम्माननीय पद प्राप्त था। आगे चलकर विशिष्ट

सोझित सूनी सुणी चांपा कुंपा साथी आयौ चलाई ॥
थयौ राजा दुई मास लगि इतरै अजितसिंह आवीयौ ।
तेरैं साप राठौड़ आयां तरै दलथंभण नैं थकावीयौ ॥१॥
सिरियारी रह्यौ सिर टेकि महीना दोइ भूपे लागौ ।
आलस पासि गयौ आगरै दुंनी नैं पवाई थयौ नागरौ ॥

पद व्यक्तिवाचक नामके रूपमें व्यवहृत होने लगा। यह भी एक संयोगकी ही वात है कि इसका प्रथम प्रयोग जसवंतसिंहके पुत्रके लिए किया गया, जन्मनेके चार माह वाद संसारसे कूच कर गया।

अजितसिंहकी रीति-नीतिसे कतिपय सरदार असंतुष्ट थे। वे इनके उत्कर्षसे ईर्ष्या रखते थे। औरंगज़ेवकी मृत्युके वाद जव भारतमें अराजकता फैली तव असंतुष्ट राठौड़ोंने कृत्रिम दलथंभन खड़ाकर सोझितमें शासन स्थापित करवा दिया। अजितसिंहको जव ज्ञात हुआ तव पर्याप्त सेनाके साथ सोझित पर आक्रमण कर नूतन संघटित षड्यंत्रको विफल करना चाहा। अजितने कहलाया दलथंभन तो मेरा वंधु है उसे मेरे समक्ष खड़ा करो, व्यर्थ युद्धसे क्या लाभ ? पर परिस्थिति विपरीत रही और युद्ध अनिवार्य हो गया। कृत्रिम दलथंभन और उनके साथियोंको जान वचाकर भागना पड़ा। 'अजितोदय काव्य' के अनुसार तो वह सोझितमें ही मारा गया था। यह घटना सं० १७६२ (चैत्र संवत्‌के अनुसार सं० १७६३) की है। सर यदुनाथ सरकारने अपनी मूल्यवान् रचना 'हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेव' (ज़िल्द ५, पृष्ठ २९२) में भी यही माना है कि जोधपुर अधिकृत हो जानेके वाद ही सोझित पर अजितसिंहका शासन स्थापित हुआ।

पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा कृत 'जोधपुर राज्यके इतिहास' (पृष्ठ ५३२) में सूचित किया गया है कि दलथंभनको वादशाहके पास, विरोधी लिवा ले गये, वहाँ वांछित कार्य सिद्ध न हो सकने पर मेहरावखांके पास जाकर स्वामी गोविंददासके स्थानमें ठहरे और अजितसिंहने विश्वस्त कर्मचारियोंको भेजकर दलथंभनको मरवा दिया। परन्तु महामहोपाध्याय श्री विश्वेश्वरनाथ रेऊ प्रणीत 'मारवाड़ के इतिहास' पृष्ठ ३०८ से फलित होता है कि सं० १७७२ में चांपावत हरिसिंह और भाटी खेतसीको भेजकर जैतावत अर्जुनसिंह (जो विरोधियोंका प्रधान था) एवम् दलथंभनको मरवा दिया।

आयां फिरि मरतां भूप	घोडनिं घास न लहतो ।
छोडी चांटी चाकरी	चांट पैंड़े हूआ वहता ॥

इतने विवेचनके बाद प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वस्तुतः यह कृत्रिम दलथंभन था कौन ? इस संबंधमें आधुनिक इतिहासकार सर्वथा मौन हैं। तात्कालिक ऐतिहासिक साधन भी प्राप्त नहीं जो इस समस्याको समाधानका रूप दे सकें। प्रस्तुत सईकीकार जयचंदने दलथंभनके संबंधमें किंचित् संकेत दिये हैं, पर इसमें सत्यांश कितना है और सांप्रदायिक पुट किस सीमा तक है यह तो अकाटच अन्य सम सामयिक प्रमाणोपलब्धि पर अवलंबित हैं। कवि कहता है कि—

"लोंकाकी परंपरामें रामाजोगाका शिष्य रायचंद था जिसका चातुर्मास आंबेरमें था और उसने अपने आपको दलथंभन घोषित कर दिया। उधर पातशाहकी मृत्यु हुई और इधर जैतावत अर्जुनसिंहके अतिरिक्त चांपावत, कूंपावत आदि राजपूत सरदारोंका योग मिल गया। सोझितको सूनी देखकर दो माह तक वहांका शासक बना रहा। अजितसिंहको पता लगने पर उसे मार भगाया। यहांसे वह दो माह तक सिरियारीमें रहा, फिर शाह आलमके पास आगरा गया, पर अर्जुनकी अर्ज पर वहाँ भी अनुकूल विचार न हो सका न सोझितका शासन ही प्राप्त हुआ। अजितसिंहने जोधपुरसे मुसलमान शासकको भगाकर अपनी पैतृक राजधानी प्राप्त की और सम्यानयन-समीयाणा, मेड़ता व फलोधीका काम भंडारियोंको संभलवाकर दलथंभनको सोझितसे हटाया और अपना अधिकार कायम किया है।"

कवि जयचंद यदि चैत्री या श्रावणी संवत्का उल्लेख कर देता उलझन खड़ी नहीं होती। सं० १७६५ चैत्र कृष्ण ५ को अजितसिंहने जोधपुर हस्तगत किया। पुनः कारणवश जोधपुर खालसा किया गया। दूसरी वार सं० १७६५ श्रावण कृष्णा १२ को पूर्ण अधिकार किया गया। सोझित चाहे प्रथम अधिकारके समय ली हो तो भी कविका कथन ठीक नहीं ठहरता, कारण कि गौ० ही० ओझाने जोधपुर राज्यके इतिहासमें सूचित किया है कि "दलथंभनको खड़ाकर चार साल तक वे सोझित परगनेमें जहांका हाकिम सरदार खां था—लूटमार करते रहे—फिर बादशाह औरंगजेबकी मरनेकी खबर पाकर जब देशमें चारों ओर अराजकता और उत्पात फैलाने लगा, तो उन्होंने भी इस अवसरसे लाभ उठाकर सोझितके शाही हाकिमके भाग जानेपर वहाँ अधिकार कर लिया। उन्होंने अन्य सरदारोंको भी

अरज न लागै अरज़नसिंह री घणुं फिरी तिकै गली ।
निज धरती लाभै नहीं ठिक चूकी वात जेटली ॥२॥
राजेसिंह[1] राठौड़ क्रिस्नगढ़[2] राठ कहाणों ।

लालच देकर अपनी ओर मिलानेका प्रयत्न किया । इन सव वातोंकी सूचना पाते ही महाराजने (अजितसिंहने) पंद्रह वीस हजार सवार सेनाके साथ सोझित पर चढ़ाई कर इसे घेर लिया । घेरा ११ दिन तक रहा……… । सं० १७६३ ज्येष्ठ वदि ६ रविवारको आवी रातके समय गढ़के भीतर, जहांसे लोग चले गये थे, महाराजाने अधिकार कर लिया ।"

अव सवाल यह रह जाता है कि क्या लोंकागच्छीय पट्टावलीमें इस नामका कोई व्यक्ति मिलता है जिसने सूचित समयमें आंवेर चौमासा व्यतीत किया हो और वह किसी राजनैतिक षड़यंत्रकारियोंका हथियार वना हो ? तात्कालिक लोंकागच्छीय उपलव्ध गुरु परंपरामें तो रामा जोगा और रायचंद नामक किसी व्यक्तिका पता नहीं चलता न अन्य साधन ही इसपर कुछ प्रकाश डालते हैं, फिर भी जव एक जिम्मेदार कविने यह सूचना दी है तो इसे उपेक्षित भी नहीं रखा जा सकता । अन्वेषण आवश्यक है ।

१. राठौड़ कुलावतंस किशनगढ़ नरेश महाराजा मानसिंह (राज्य काल सं० १७१५-१७६३) पुत्र थे । इनका राज्याभिषेक सं० १७६३ में हुआ था । सुप्रसिद्ध संत प्रवर श्री नागरीदास-सांवंतसिंह इनके पुत्र थे । जिन दिनों राजसिंह सिंहासनारूढ़ हुए उन दिनों भारतका राजनैतिक क्षितिज घूमिल था । अराजकताकी स्थिति वनी हुई थी । मुगल शासनका प्रभाव क्षीण हुआ जा रहा था । मुगल शासक पुनः भ्रातृयुद्धके कगार पर खड़े थे । इन्हें भी जाजउ-युद्धमें वहादुरशाहकी ओरसे आजमके विरुद्ध लड़ना पड़ा था । इसका प्रामाणिक और रोचक वर्णन इन्हींके आश्रित कविवर वृन्दने वड़ी ही ओजस्वी भाषामें किया है जिसमें प्रधानता राजसिंहको देते हुए भी अनेक गण्यमान यौद्धिकोंकी परिगणना की गई है जिनका उल्लेख अद्यतन इतिहासों-में नहीं मिलता । यहाँ तक कि भाट और खवासों तककी नामावली दी है जो युद्धकी वेदी पर वलि हो गये । राजसिंहका वर्णन देखिये—

कवित्त

करन सो दाता पर काज को करनहार करन पिताके भासमान भा समांन है ।
विक्रम नरेस जैसो विक्रम विसेषियत कृपा श्रीत्रिविक्रमकी धीरज निधांन है ॥
वृन्द कहै देव देवराज जैसो नरदेव वसुदेव मनि वासुदेव गुनगांन है ।
राजा राज जैसो है विराजमान मान नंद महाराजा राजसिंघ राजै राजवांन है ॥

छप्पय

गुन गंभीर श्रीरायवीर पंडीर धीर महि।
मांन नंद सांहन समंद छवि चंद वृंद कहि॥
राज हंस तप तेज हंस अवतंस बंसवर।
निधि निवास बासव-विलास भासकर॥
इक साहि उथप्पिय छत्र हरहि इक्क साहि थपिय छत्र धरहि।
महाराज बहादर राजसिंघ जग आरंभै सो हरहि॥२१॥

× × ×

प्रथम जुलफ़कार सलेमांनपांन पांन हमीद्दी अमांनुल्ला वीर तिवितान के।
हाड़ा रांमसिंघ औ बुंदेला दलपति और आज़मके बांके उमराव नाना बांन के।
कोह धरि लोह भरि घेरा करि घेरे राजा राजसिंघ प्रबल प्रताप बलवांन के।
कर सर लागे अरि ऐसैं मुरझाय गए जैसें तारे ग्रह अस्त होत तेजमान के॥

राजसिंह जैसे रणकौशल प्रवीण थे वैसे ही साहित्य निपुण भी थे। तलवार और लेखिनी पर इनका समान आधिपत्य था। वृन्दको शाही दरबारसे किशनगढ़ लानेका सौभाग्य इन्हें ही प्राप्त था। राजसिंह किशनगढ़-के प्रथम नरेश ग्रंथकार थे, यद्यपि इतःपूर्वके नरेशोंकी मुक्तक-स्तुतिमूलक रचनाएं उपलब्ध हैं पर स्वतंत्र कृतियां तो इन्हीं की सर्वप्रथम मिली हैं। इनकी रचनाओंका पूर्ण विवरण-सुखसमीप, राजा पंचक कथा, ब्रज विलास और स्फुट दोहोंका—इन पंक्तियोंके लेखक रचित "राजस्थानके अज्ञात साहित्य वैभव" में दिया गया है। बांकावती-ब्रजदासी इनकी रानी थीं जो स्वयं ग्रंथकर्तृ सुशीला महिला थीं। इनकी अज्ञात रचनाओंका परिचय भी सूचित उपर्युक्त कृतिमें समाविष्ट है।

• किशनगढ़ बसानेवाले महाराजा किशनसिंहजी जोधपुर नरेश उदयसिंहजीके पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६३९ में हुआ था। ये वीर प्रकृतिके व्यक्ति थे। पिताके परलोकवासके बाद बंधुओंमें आपसी मन-मुटाव हो जानेके कारण वह शाहजादा सलीमके पास चले गये जहां इनका समुचित आदर हुआ और जब सलीम बादशाह बना तब इनका मन्सब और बढ़ाया गया। अपनी वीरता और बौद्धिक कार्य-कौशलके परिणाम स्वरूप इन्हें सोठेलावकी जागीर कुछ परगनोंके साथ बादशाहकी ओरसे प्राप्त हुई। उपर्युक्त जागीर इतःपूर्व धणसोतोंके पास थी जो इनके मामा लगते थे। महाराज किशनसिंहजीके मनमें नूतन पाटनगर स्थापित करनेका मनोरथ हुआ। सोठेलावसे दो मील

दूर किसी समय भ्रमण करते वह निकल गये जहां इनने एक भेड़नीको सिंहसे बच्चोंकी रक्षा करते-जूझते पाया, मनमें निश्चय किया कि यही वीर भूमि है, यहीं दुर्ग बनाना उपयुक्त है। पर वहां सरोवर तट पर एक जोगी धूनी रमाए पहलेसे ही जमे हुआ था। उनसे आज्ञा लेकर दुर्ग बनवाना प्रारंभ किया। इस प्रकार सं० १६६८ में किशनगढ़ बसाया गया। जहां दुर्ग बना है उसके समीप आज भी योगीका स्थान "लासनाथ स्थान" नामसे प्रसिद्ध है। निकटवर्ती सरोवरका नाम भी "जोगी तलाव" पाया जाता है। फ़ारसी तवारिख़ोंमें उल्लेख है कि शाहजहाँ अजमेर आते हुए यहाँ कई बार ठहरा था।

हरिदुर्ग-दैत्यारि दुर्ग-नगवरनगर-कृष्णदुर्ग आदि किशनगढ़के अनेक नाम हैं। यहांके शासक प्रारंभ कालसे ही कृष्णोपासक रहे हैं। राजस्थानमें यही एक ऐसा नगर रहा है जहांका शायद ही कोई ऐसा नरेश हुआ हो जिनकी रचना—चाहे मुक्तक ही क्यों न हो—उपलब्ध न होती हो। संगीत, साहित्य और कलाकी उपासना तथा प्रसारणमें यहांके शासकोंका बहुत ही उल्लेखनीय योग रहा है। किशनगढ़की साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपरा पर इन पंक्तियोंका लेखक स्वतंत्र निबंधमें प्रकाश डाल चुका है।

हिन्दी साहित्य और भाषाके प्रकाशित इतिहासोंमें किशनगढ़के राज परिवारका साहित्यिक मूल्यांकन आज तक नहीं हुआ है, इसका कारण एक मात्र यही प्रतीत होता है कि उनकी रचनाएँ उनके अपने सरस्वती भंडार तक ही सीमित रहीं। जिनपर थोड़ा बहुत काम हुआ भी है वह भ्रामक है। उदाहरणार्थ डा० सावित्री सिन्हाके "मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ" नामक महानिबंधमें छत्रकुंवरि बाईका परिचय कराते हुए सूचित किया है कि—

> "छत्र कुंवरिबाई नागरीदासजीके पुत्र सरदारसिंहकी पुत्री थीं। इनका विवाह सं० १७३१ में कांठड़ेके गोपालसिंहजी खींचीसे हुआ था। विवाहमें इनकी आयु लगभग सोलह वर्षकी तो अवश्य ही रही होगी, अतः इनका जन्म सं० १७१५ के लगभग माना जा सकता है।"

श्री सावित्रीजीने किशनगढ़के इतिहासको देखा होता तो यह भूल न हो पाती। इनका विवाह सं० १७३१ में बताना तो हास्यास्पद है, उस समय तो इनके प्रपिता राजसिंहका भी जन्म नहीं हुआ था और छत्रकुंवरिका जन्म सं० १७१५ में अनुमित किया जाना तो और भी आश्चर्यजनक है, जब किशनगढ़में मानसिंहका शासन था। सरदारसिंह (जिनका राज्य काल

बूंदी रा बुधसिंह	हाड़ां रो राउ वचांणो ॥
आया आलम री भीर	मोजदीन आजिम भाई ।
आजिमें दीदारबगस मूआ	चिहूं करी लडाई ।
आलिम हूओ अवनीपति	दावी रह्या सारी धरा ।
ओर सुं न करें चाकरी	असि राप राई आकरी ॥

सं० १८१२-१८२३ तकका रहा है) तो राजसिंहके पौत्र थे । राजसिंहका राज्यकाल सं० १७६४-१८०५ तकका रहा है । नागरीदासजीका स्वर्गवास सं० १८२१ में हुआ । इन संवतोंसे छत्रकुंवरि विषयक भ्रान्तियोंका निरसन हो जाता है । यदि डॉ० सावित्रीजीने छत्रकुंवरिके ग्रंथोंमें प्रयुक्त संवतोंपर ध्यान केंद्रित किया होता तो भी इनके अस्तित्व काल विषयक समस्या हल हो जाती । पर प्रयुक्त संवतोंका भी गलत अर्थ निकाला गया । प्रेमविनोद सं० १८४५ की रचना है जिसे सं० १७४५ की मान लिया गया । महा निबंध लिखनेका प्रयास करनेवाले महानुभाव यदि थोड़ी-सी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर ध्यान देकर अनुसंधान करें तो ऐसी उपहासास्पद स्खलनाओंसे अपनेको सरलतासे बचा सकते हैं ।

१. बुधसिंहजी पर इसी कृतिमें अन्यत्र प्रकाश डाला जा चुका है ।
२. आलमसे तात्पर्य शाह आलम—बहादुर शाहसे है ।
३. अजीमुश्शान जिसकी गोलीसे आजमका पुत्र बेदारबख्त मारा गया था । मोजदीन-मुईज्जुद्दीनकी गोलीसे आजम मारा गया था ।
४. शाहजादा आजम और वालाज्यांन जाजउ युद्धमें मारे गये थे—

छंद हरिगीत

अगपति आजम कांम आए लगी गोली संगमें ।
अहंकार अंग अपार जेंमें दस भुज योगमें ॥
बेदार वालाज्यां पर रन वीर गोली लागी कें ।
होंनी न ऐसी भई जैसी जंग पावक जागि कें ॥३४१॥

कवि वृंदकी वचनिकासे उद्धृत

५. जाजउ युद्धमें आजम पर विजय प्राप्त कर शाह आलम बहादुरशाह घोषित हुए—

जय जय सौं दल बुगल सौं धरो निसांन बजाय ।
भए बहादुरशाह नृ देरों दारिद्र धाय ॥३४५॥

वृंदकी वचनिकासे उद्धृत

नदी नरवदा नीर दक्षिणी पीवै हद दावी ।
नारि मालवौ मुलक पांतिई पाग बांधै पावी ॥
दावी न सकै तुरक दिल्ली जे वाप दादारी ।
थटा मुलताण क्रिम थाइ पीर पठांणं पाधी ।
ओर आगरै पासि जट्ट[1] तणों मूंछाला पेल फोरवौ ।
दढ़ियाला दांव रह्यो कोई म करज्यो गारवौ ॥

१. कविने दाढी और मूंछेंवाले जाट वीरोंका उल्लेख किया है, पर इनका प्रधान कौन था ? मौन है । तात्कालिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमिके परीक्षणसे पता लगता है कि कविका संकेत राजाराम और चूड़ामनकी ओर ही है । क्योंकि वे ही कविके अस्तित्व कालिक व्यक्ति हैं जिनके उपद्रव और लूट-खसोटसे मुगल कर्मचारी त्रस्त थे ।

सचमुच देखा जाय तो मुगलोंके अत्याचारोंने ही जाटोंको प्रोत्साहित किया और हलसे उठाकर हाथ शस्त्रोंकी ओर वढ़वाये, वर्ना ये कृषि द्वारा अपना पेट पालते थे । सं० १७२६ में औरंगज़ेवने मंदिरोंको तुड़वाना प्रारंभ किया । व्रजभूमिके मंदिरोंके साथ भी यही नीति काममें लाई गई और इससे जाटोंका खून खौल उठा । गोकुला जाटका वलिदान हुआ, आगरामें जन साधारणके समक्ष इन्हें कत्ल किया गया ताकि आतंक जम जाय । परिणाम विपरीत आया । जाट जाति सचेष्ट हो गई और मुगलोंके प्रति उसके हृदयमें घृणाके भाव भर गये । गोकुलाके बाद राजाराम, भज्जनसिंह, व्रजराज आदिने जाटोंका सफल नेतृत्व किया और चूडामण तक तो ये पूर्णतया संघटित हो चुके थे । मुगल शासकोंने इन्हें संतुष्ट करनेके कई प्रयत्न किये, पर विफल रहे । विष्णुसिंह कछवाहा, जयसिंह सवाई, कोटाके किशोरसिंह, वेदारवख्त आदिको इनके दमनके लिए कई वार भेजा गया, पर वांछित सिद्धि प्राप्त न हुई ।

जव भी मुगलोंका आपसी संघर्ष हुआ, जाटोंने दोनों ओरसे लाभ उठानेकी चेष्टा की । ये हारनेवालेको लूटते और जीतनेवालेको अपनी सहानुभूति वताते । यहाँ तक कि शाही सेनाके हाथी तक लूटनेमें ये लोग पश्चात्पद न रहे । अंततः मुगल शाहने इनके मुखिया चूड़ामणको "राहदार" की उपाधि और शाही दरवारमें मन्सव प्रदान किया, पर लूटका काम भी वदस्तूर जारी रहा ।

चूड़ामणके बाद वदनसिंहका स्थान आता है। इनका आंबेरके सवाई जयसिंहसे अच्छा मेल-जोल था। इनने एक बार सवाईको मृत्युके मुखमेंसे बचाया था। इसकी विस्तृत सूचना जयसिंहके अज्ञात दरवारी कवि किशोरने अपनी नवज्ञात रचना—सवाई पच्चीसी और सवाई बत्तीसीमें दी है जो मेरे "राजस्थानके अज्ञात साहित्य वैभव" में प्रकाश्यमान है। सं० १७७५ में वदनसिंह डीगका अधिपति बना, कई दुर्ग और सुन्दर भवन बनवाये और विधिवत् सवाई जयसिंहसे राजतिलक करवाया। अब तो राजा और राजाधिराज कहलाने लगे। सं० १८१२ में इनका देहोत्सर्ग हुआ और राज्याधिकारी हुए वीर सम्राट् सूर्यमल्लजी। ये प्रतापी, वीर और साहित्यिकोंका आदर करनेवाले थे। कवि सोमनाथ, सूदन जैसे हिन्दीके विख्यात कवि इनकी सभाके गौरव थे। यहाँसे जो सांस्कृतिक तत्त्व पोषणकी परंपराका सूत्रपात हुआ वह लगभग दो शताब्दी तक निरंतर चलता ही रहा। अनेक विषयोंका हिन्दीमें साहित्य रचा गया, अनेक कवियोंको प्रोत्साहन मिला और सरस्वतीकी चतुर्मुखी साधनाका केंद्र स्थान भरतपुर वन गया। विना किसी संकोचके साथ कहा जा सकता है कि जाटोंने हिन्दी भाषा और साहित्यके विकास, निर्माण और प्रसारणमें अनुपम योग दिया है, पर इसका समुचित मूल्यांकन होना शेष है।

भरतपुरके कवि मोतीरामजी और सदानंद चतुर्वेदीने क्रमशः "चंद्रवंश की वंशावली" और "व्रजेंद्रचरित्र महाकाव्य" संस्कृत और हिन्दीमें निगुम्फित किये हैं जिनमें वहाँके राजवंशका विशद् परिचय दिया गया है। सदानंदकी रचना संस्कृत भाषामें है और काव्यतत्त्वकी दृष्टिसे विशिष्ट महत्व रखती है। इसकी एकमात्र प्रति इन पंक्तियोंके लेखकके संग्रहमें सुरक्षित है। इसका विस्तृत ऐतिहासिक टिप्पणोंके साथ संपादन भी लेखक द्वारा किया जा चुका है। काव्यका अंतिम भाग इस प्रकार है—

इत्थं मद्गदिताशिषां श्रवणतः प्रीतेन भूमिपते
काव्यं स्वच्छमिदं व्रजेन्द्रचरितं चाकर्ण्य सम्यक् त्वया
भूवृत्तिः कवये हि मह्यमधुनादेयास्ति साहं यया
जीवन् श्रीयमुनाम्भसा प्रतिदिनं स्नात्वा भजेयं हरिम् सर्ग १६, पद्य ४७

इत्थं काव्यमिदं व्रजेन्द्रचरितं श्रुत्वाप्यमुर्वीपति-
र्भूवृत्ति कवये प्रदाय च मुदा धर्मेण पाति क्षितिम्
एतल्लव्यसुजीवकः कविरयं मिश्रोपनामा सदा-
नंदः श्रीयमुनाम्भसि प्रतिदिनं स्नात्यर्चति श्रीपतिम्

४८

अजितसिंह जोधपुर आई माल लीयौ तुरकानैं मारी ।
समीयांण मेड़ता फलवधी भलो चलायौ कांम भंडारी ॥
दलथंभण नें धकाई सोझित ही सारी लीधी ।
मुकुंददास परधांन दुरंगदास री मती धारी ॥
भंडारी पकड्या मगसरें संधवीयां नें कांम सुंपायौ ।
धरती रो नव मुहरो चाहि धन आपण काजे अप्पीयौ ॥

\+ + +

अवरंग वैठी इल मांहि तरे दुनी सारी थरकाणी ।
हींदूए दावी हद नाठा तुरक न लहै पाणी ॥
आयां पड़े आजम दीदारवकस[1] पिण धायौ ।

मथुरायांदैवज्ञो माथुरकुलनीरजन्ममार्तण्डः
विद्वानिच्छारामः श्रीपतिसेवासमाहितहृदासीत् ४९
तस्य सुतो मन्त्रज्ञः श्रीफोंदारामनामाभूत्
ईश्वरकृपाप्तविद्यो वभूव माथुरसमूहगुरुः ५०
तस्य जगन्नाथोऽभूत्तनयः पूर्वं तु जितमल्लः
पश्चादीश्वकृपया गणितविदामग्रणिरासीत् ५१
तस्य किशोरस्तनयः समग्रशास्त्रार्थकारकेविद्वान्
तस्य सुतौ द्वौ भवतः श्रीगोवर्द्धनसदानंदौ ५२
श्रीशीलचंद्रशिष्यः कविरस्ति श्रीसदानंदः
रचितं व्रजेन्द्रचरितं तेन मया षोडशैः सर्गैः ५३
शिवलोचन-खनवेन्दुप्रमीतेऽब्दे फाल्गुणे मासि
तिथ्यां चतुर्दश्यां रविघस्रेऽगात् समाप्तिमिदं ५४
यद् व्रजेन्द्रचरिते ऽस्त्यसंगतं शब्दशास्त्रविपरीतमप्यथनीराम्
विगतवृत्तलक्षणं शोधयन्तु तत्कवयो दयालवः ५५
श्रीमन्माथुरविप्रवंशमिहिरो विद्वान्किशोरः सदा
नंदं रूपमती च यं प्रसुषुवेदेवी शिवार्चापरम्
तेन श्रीवलभंतसिंहनृपतिप्रीत्यै प्रणीते महा-
काव्ये षोडश व्रजेन्द्रचरित सर्गोऽगमत् पूर्णताम् ।

इति श्रीसदानन्दकृते अथाद्यन्ताङ्के व्रजेन्द्रचरित काव्ये षोडशः सर्गः ॥१६॥

१. यह इतिहास प्रसिद्ध वेदारवख्श ही है।

अस्थियां[1] रह्यौ ग्वालियर इंद्रसिंह नागोर आयौ।
जैसिंह चिहुं दिसि चौ....... सांगानेर ने सलकीयौ।
आलिमशाह अवनीपति हूऔ तरे आंबिर रो पटो अटकीयो[2] ॥
अजितसिंह सीवाणा रो साथे नरूका दुर्गादास।
तेग संवाही रामचंद हाथें वाणों सैंभर दंड ॥
मार्‌यां तुरका नें वांणे....... करै रूपीया रोकड़ा।[3]
साथ पोते रापी योधांणे दुर्गादास रांणा नें ताकीयौ।

१. दक्षिणसे आज़म आया था उस समय अस्थियां इनकी सेनाके साथ था। वह ग्वालियरमें रुक गया था।

२. सं० १७६४ में बादशाहतके लिये बहादुरशाह और आज़मके बीच जो युद्ध हुआ था उसमें आंबेरके सवाई जयसिंह आज़म की ओरसे बहादुरशाहके विरुद्ध लड़े थे। आज़मके मरनेके बाद वह बहादुरशाह की सेवामें चले गये, पर उसने इनका विश्वास नहीं किया और मन ही मन इन पर अप्रसन्न रहने लगा। बात यहाँ तक पहुंची कि आंबेर खालसा कर इनके छोटे भाई विजयसिंह को देना तय हुआ। जो काबुलमें बहादुरशाहके साथ था। सैयद हसनअलीखां को आंबेर पर भेज दिया गया जिसे बादमें वहांके जयसिंहके विश्वस्त दीवान रामचंद्र और श्यामसिंह कछवाहाने भगाया। कामवख्शको दबानेके लिए बहादुरशाहको दक्षिण जाना पड़ा और नर्मदा नदीके तट तक जयसिंह और मरुधराधीश अजितसिंह पहुंचाने गये, पर दोनों को वादेके अनुसार अपने नगर न मिलनेसे, बादशाहको बिना कहे ही वापस लौट कर महाराणा अमरसिंहके पास मेवाड़ पहुँचे।

३. महाराजा अजितसिंहका जोधपुर पर पूर्ण आधिपत्य जम जानेके बाद कुछ समय तो दुर्गादास आरामसे महाराजा की सेवामें रहा, पर अन्य सरदार इसकी उन्नति देख कर मन ही मन जला करते थे। अजित को इनके विरुद्ध बहकाया करते थे, फलस्वरूप अजितसिंहने ऐसे समर्थ स्वामिभक्त को मारवाड़से निकाल दिया और वहांसे दुर्गादास महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय कीं सेवामें आ गये। १५०००) रुपये मासिक इन्हें मिलते थे और विजयपुर की जागीर इन्हें प्राप्त थी। बादमें रामपुरा की सत्ता भी सौंपी गई जहाँ इनका देहोत्सर्ग हुआ।

मारवाड़में कहावत है कि—

आई चाकर हूऔ उदैपुर धनिचिंत हूआ थानक ॥
······आयां आंवेर जोधपुर

× × ×

जयचंद निचिंत हूआ जय करी गढ़पति मतौ करी तीन ।
मार्या तुरकांने वाणें डीडवानौ साचर दंड ॥
थिर रापै पोतारो थांणें आंवेर जोधपुर जाई ।
वैठा पतिसाह······वाडी निडर हूआ निचिंत ॥
चाकरी सूलगी छांड़ी वल मांगौ पतसाह रौ ।
हीन्दू एक मतौ कीयौ योधपुर······॥

× × ×

आगरै थी आलिम आंणचित्यौ जोधपुर आयौ ।
मिलीयौ अजित मन मोट पतिसाह दक्षिण भगायौ ॥
क्यामवगस करि जेर दक्षिण में रोपीयौ थांणो ।
दिल्ली आवण ताकीयौ नदी घाटे दीयौ थांणो ॥
साहि आलिम चिंतवै दिल्ली गयां वात न वणें ।
हीन्दूए हद दावी हठे कीधी नही चाकरी किणे ॥
············णि अमरस धरै अजित सहु धरती रापै ।
सारी दुनीं नें दुख देता ············ ॥
पकड्या वांध्या भंडारी चांपावतां नें चिंतवी ।
भगवानदास नें परधानवट दीधी ।
साह्न दै सिरपाव [1]पीमसी नें वगसीस कीधी ॥

महाराज अजमाल री जद पारख जाणी ।
दुर्गो देशां काढीयो गोलां गांगाणी ॥

१· भंडारी खीमसी जोवपुरके विश्वस्त राज कर्मचारियोंमें थे। अजितसिह की पुत्रीके लग्न समय इनकी स्त्रीसे फ़ुरंखसियर को आरतो उतारी थीं। पर उत्तर कालमें वहुतसे सरदार इनसे इसलिये अप्रसन्न हो गये थे कि अजितसिंहके मरवानेमें इनका भी हाथ था। इन्हें कैद कर लिया था।

माईदास नें·······दे धरती दांम उगाहीया ।
सोझित खूंपी सिंधवी राण्या दालिद ढाहवा ॥

× × ×

इंद्रसिंह पिण आई सात सें गांम नागोर रा सारा ।
मुहकम पासे माला··· ·······पद तले वेलारा ॥
वेटे वाप विरोध मेला हुआ जिहां थी भापे ।
न हूवै मेला विजक······· राज रीत आही जु रापे ॥
तंत्रू खड़ा कीया वाहिरे मनावै मूहकमसिंह भणी ।
इग्यारे पेढीया ······इति आगलि इंद्रसिंह राजा घणी ॥

× × ×

आगरा थी आलिम इला देपण नें आयौ ।
सांगानेर आंवेर थांणो आपणो थपायौ ॥
वीलाडैं आई त्रे······ तप्पत जैतारण वैठो ॥
वलंदी मारीयौ मेर सहू भापार पैठो ॥
आई मिल्यौ अजितसिंह तव दुरंगदास मिलीयौ वली ।
साह वहादर साथ सव अजमेरे पुहतौ रली ॥

× × ×

ख्वाजे री दरगाह कवांण न चढी कोई ।
राणां उपरि रीस करी मेवाडि चढाई ।
मही न मारी कांई पाधरौ कह्यौ दक्षिण पैड़े ।
चित्तौड़ जावद जाई चलहु दशौर कोई न छेड़े ॥
हीन्दू तुरक सारा हव्या कछवाहा राठौड़ कानै हूआ ।
फिल्या पतसाह रा पाव सुं न दीयां पातसाहै हूआ ॥

× × ×

पैंसठें पतिसाह वैसापे दक्षिण नें चलीयौ ।
मारवाड़ मेवाड़ मालवैं अहंमद आधो नींकल्यौ ॥
हीन्दूए.लोपाई हद जैंसिंघ अजितसिंघ आया ।

जोधपुर यवनें जोर तुरक पेसी...... ॥
उदैसिंह वैजा हण्यो दुरंग नें देसपटो दीयौ ।
आऊवै थी उदैसांण कीर्तिसिंह नागोर आई रह्यौ ॥
[1]मारीया मुकुंद रुघनाथ प्रताप कुंदावत सरायौ ।
गोवर्द्धन कल्याणदौत राही ठवि दूरि करायौ ॥
जैताजैत[2] अरज्जुन रामसिंह काढ्या धरती बाहिरे ।
नागौर कोट तणो धणो इंद्रसिंह राजी पेसकसी आदरैं ॥

× × ×

गुढा राहद्रडा कीया ख्वार मेहवै सैत्रावै दांण वैसाड्यौ ।
वाला पाड्या निवल मेरे अजीत रौ फूल धारयौ ॥
मारहठ में मेड़तीयो मारी गोइंदगढ़ थाप्यौ थांणो ।
पीसांगण—ली पेसीकसी वाधणवाडा रो धणी वंधाणों ।
अजीत रो मांन उतारिस्यै पातिसाह मुंहकमसिंह आईनैं ॥

●

१. पालीके ठाकुर मुकुंददास, जो शाही दरबारका मंन्सवदार था, और उसके भाई रघुनाथसिंह को अजितसिंहने ऊदावत ठाकर (छिपिया) प्रतापसिंहसे कत्ल करवा दिया और मुकुंददासके सेवक धन्ना और भींयाने प्रतापसिंह की हत्या की ।

२. जैतावत अर्जुनसिंह तो दिल्लीमें ही कृत्रिम दलथंभनके समय मारा जा चुका था ।